आज़ादी की कुर्बानियाँ

आज़ादी की कुर्बानियाँ

श्री राजेश्वरप्रसाद नारायण सिंह,
बी०, ए०, एम०, एल०, ए०,

किताब-घर,
कदमकुआँ, पटना ।

प्रकाशक—
श्री परमेश्वर सिंह,
किताब-घर
कदमकुआ, पटना।

पहली बार
मार्च १९४०
कीमत आठ आने

मुद्रक—
विष्णुदत्त शुक्ल,
शुक्ल प्रेस, ७।१, बाबूलाल लेन,
कलकत्ता।

अनुवचन

बाहरवाले अक्सर ऐसे प्रश्न किया करते हैं कि भारतवर्ष परतन्त्र क्यों है ?—क्या वह सचमुच स्वतन्त्र होना चाहता है ?—और अगर चाहता है, तो क्या वह स्वतन्त्रताकी क़ीमत चुकानेको तैयार है? कांग्रेसकी ओरसे स्पष्टसे स्पष्ट शब्दोंमें यह घोषणा की जा चुकी है कि हमारी माँग पूर्ण स्वराज्य या मुकम्मिल आजादीकी है और वह आजादी हमे तभी मिल सकती है, जब हम उसके लिये अपनी कुर्बानी करनेको तैयार हो जायँ। हमारे नेताओंको पूरी आशा है कि जो अग्नि-परीक्षा हमारे सामने है, उसमे हम नामवरीके साथ उत्तीर्ण होंगे और इसी आशासे उन्होंने चेतावनी देना आरम्भ कर दिया है कि अन्तिम संघर्ष या संग्राम छिड़नेकी घड़ी बहुत करीब है,—स्वतन्त्रताके प्रेमी—आजादीके दीवाने—अपनी सचाईका सुबूत देनेके लिये हर तरहसे तैयार हो जायँ। ऐसे मौकेपर इस पुस्तकका प्रकाशन विशेष उपयुक्त है। आजादीकी कुर्बानियाँ एकसे एक बढ़कर हुई है। महात्मा गांधीने हमें मर-मिटनेका जो रास्ता बताया है, वह बिल्कुल नया है, पर उसपर चलते हुए भी हम उन वीरोंकी गुणगाथासे बहुत-कुछ धैर्य्य, उत्साह और आत्म-विश्वास प्राप्त कर सकते है, जिनका रास्ता हमसे जुदा था—जिनकी बलिदान-पद्धति हमसे भिन्न थी। पुस्तकके लेखक श्री राजेश्वरप्रसादनारायण सिंह,एम० एल० ए० को आज ऐसी कुर्बानियोंकी कहानी सुनानेके लिये सभी स्वातन्त्र्य-प्रेमी हार्दिक बधाई देंगे।

पटना, ८ मार्च १९४०

श्रीकृष्ण सिंह,
(भूतपूर्व प्रधानमन्त्री, बिहार)

पहली चिनगारी
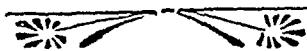
सन् १९१७ के मार्च महीनेमें रूसके एक छोरसे दूसरे छोर तक "इन्क़लाब जिन्दाबाद !"—"क्रान्ति अमर हो !"–की ध्वनि गूंज उठी, पर इससे यह न समझना चाहिये कि क्रान्ति का आरम्भ रूसमें १९१७ से ही हुआ । क्रान्तिका बीज-वपन उस देशमें १९१७ से प्रायः ढाई सौ वर्ष पहले हुआ था और हजारों नहीं, वल्कि लाखों क्रान्ति-उपासक उसकी बलि-वेदी पर अपने प्राण दे चुके थे । यह उनके ही बलिदान का फल था कि और देशोंकी अपेक्षा कहीं अधिक जोरदार शब्दोंमें रूसने आवाज दी—क्रान्ति अमर हो !

रूसके क्रान्तिकारियोंमें सबसे पहला नाम स्टेका रेजिनका आता है। यद्यपि जारके जमाने में स्कूलों में पढाई जानेवाली पुस्तकोंमें उसे 'धर्मलुप्त' 'लुटेरा', 'गुण्डा' आदि संज्ञाओंसे स्मरण किया गया था, देहातके किस्सों-कहानियों और ग्राम-गीतोंमें उसकी कीर्ति-कहानियां, देशके एक कोनेसे दूसरे कोने तक, गाई जाती थीं और उसकी मृत्युके प्रायः दो सौ वर्ष बाद भी रूसके किसान अपनी टूटी फूटी झोपड़ियोंमे वैठे हुए उसके नाम पर आसू गिराया करते थे । स्टेंका रेज़िनका जन्म एक कज़्ज़ाक परिवारमें हुआ था और जीवनके आरम्भिक कालमे वह अपना

अधिक समय धार्मिक बातोंमें बिताया करता था, पर अधिक दिनों तक वह अपनेको राजनीतिसे अलग न रख सका। उन दिनों रूसमें दास-प्रथाका कुछ ऐसा जोर था कि उसके दुष्परिणामोंके कारण सारे देशमें अशांतिकी आग सुलग रही थी और जारका निरंकुश शासन या कुशासन उसपर घीकी आहुति दे रहा था! ऐसे ही असंगत समयमें जारने वहांके प्रचलित ईसाई धर्मके नियमोंमे मनमाना परिवर्तन करके यह घोषणा की कि जो इन नियमोंके अनुसार न चलेगा, वह जाति और धर्मसे बहिष्कृत समझा जायगा, परिणाम यह हुआ कि रूसमें विद्रोहकी आग धधक उठी और बहुतसे लोग तत्कालीन 'चर्च' से अलग हो गये। असंख्य लोगोंने अपनी अपनी झोपड़ियोंमें आग लगा दी और स्वयं धधकती हुई आगमें कूद कर मर गये, क्योंकि ज़ारके सिपाहियोंके हाथ बेरहमीसे मारे जानेकी अपेक्षा उन्होंने इसे बेहतर समझा।

ऐसे ही भीषण समयमें स्टेंक रेजिनने आगे बढ़कर बलवाइयोंका नेतृत्व ग्रहण किया था। उसने रूसके किसानोंपर जादूका-सा असर डाल दिया, उसकी अपार भक्ति और स्नेहका भजन बन बैठा। उसके शरीरमें अपरिमेय शक्ति थी और साहस था तथा अपने दुश्मनोंके साथ "शठम् प्रति शाठ्यम्" का व्यवहार करनेमें तनिक भी हिचकिचाहट न थी। उसने नेतृत्व ग्रहण करते ही यह घोषणा कर दी कि मेरा उद्देश्य रूससे दास-प्रथा तथा जारशाहीका विनाश करना

और उसके स्थानपर प्रजातंत्र स्थापित करना है और इसमें सन्देह नहीं कि उसके हृदयमें पूरी नेकनीयती थी। बलवाइयोंका उसने शीघ्र ही मजबूत संगठन कर लिया और कुछ ही दिनोंमें रूसके दक्षिण-पूर्वी हिस्सेपर उसका पूरा अधिकार हो गया। रूसके कई प्रसिद्ध नगर उसके कब्जेमें आ गये और उनमें प्रजातंत्रकी स्थापना कर दी गयी। जारकी फौजके कई स्थानों-पर उसने छक्के छुड़ा दिये। उसने एक सबल जल-सेनाका भी निर्माण कर लिया था, यहा तक कि कैसपियन सागरमे पहुचकर उसने एक बार फारसके वेड़ेको भी हराया था।

पर जारकी उतनी बडी शक्तिके सामने वह ज्यादा दिनों तक नहीं ठहर सका। उसके कुछ अनुयायी जारसे जाकर मिल गये और माफी माँग ली। १६७१ के एप्रिल महीनेमें वह पकडकर मास्को भेज दिया गया। वहां उसके अङ्गके—जीवित अवस्थामें ही—टुकड़े-टुकड़े कर डाले गये। प्रायः एक लाख और बलवाइयोंके साथ भी ऐसा ही निर्दयतापूर्ण, अमानुपिक व्यवहार हुआ।

स्टेंका रेजिनकी वीरता बडे ऊचे दर्जेकी थी और उसका हृदय विशाल था। जारका वह कट्टर शत्रु था; क्योंकि प्रजातंत्रका सच्चे दिलसे हिमायती था। जारकी उसे कितनी कम परवाह थी, यह उसके उस उत्तरसे प्रतीत होता है, जो उसने जारके दूतको दिया था—"अगर जार पत्रोत्तरकी कामना करते है, तो उन्हें स्वयं अपने हाथों पत्र लिखना उचित है।" पर इसका मतलब यह नहीं कि वह अहंकारी था। रूसकी जनता जब उसे जारके

नामसे पुकारने लगी थी, तो उसने उनके पास लिख भेजा था:—"प्यारे दोस्तो! मेरी इच्छा तुम्हारे साथ भाई बनकर रहनेकी है ज़ार बन कर नहीं।" इसमें सन्देह नहीं कि उसके हृदयमें अधिकारकी तृष्णा न थी; पर उसके हृदयमें निष्ठुरता अवश्य थी। कहते हैं, एक बार वह वोलगा नदीके जलमें खां मेंदीकी 'सुन्दरी तरुण पुत्रीके साथ—जो उसे फारसके बेड़ेको लूटनेके वक्त मिली थी और जिसे वह जी-जानसे प्यार करता था—नौकेपर तैर रहा था। उसके पास उस तरुणीको, जो सुन्दर वस्त्रों और अलंकारोंसे अलंकृत थी, पड़ी हुई देखकर उसके कुछ कज्ज़ाक अनुयायिनोंने यह आक्षेप किया कि वह देशकी स्वतन्त्रतासे अधिक उस सुन्दरीको चाहने लगा है। वह उनके इस आक्षेपको सुनकर मौन हो गया, फिर कुछ क्षणके बाद उसने राजकुमारी को अपने सरसे ऊपर उठाकर नदीको सम्बोधित करते हुए कहा:—वोलगा! तूने समय-समयपर मुझे असंख्य सोना—चांदी और अन्य मूल्यवान वस्तुओंका दान दिया है। आज मैं तुझपर अपनी सबसे प्यारी वस्तुकी पूजा चढ़ाता हूं" इतना कहकर उसने उस मंदभागिनी राजकुमारीको वोलगा नदीके अथाह जलमें डाल दिया।

दो दीवाने

ज़ार अलेकजेण्डर प्रथमके शासन-कालमें एक नये और ओजस्वी आन्दोलनका विकास हुआ। इस बार ज़ारशाहीके विरुद्ध रूसके गरीब किसान ही नहीं, बल्कि वहांके धनवान्—अधिकतर ऐसे, जो वहाकी फौजके उच्च बड़े पदाधिकारी थे—उठ खड़े हुए। उनके बीच पश्चिमीय उदार विचारोंका प्रवेश ही इसका मुख्य कारण था। नेपोलियनके विरुद्ध जो सेना रूसके बाहर भेजी गयी थी, उसने पश्चिमीय यूरोपमें जाकर वहांकी जो दशा देखी, उससे उसकी आँखोंके आगेका पर्दा हट गया—उसे एक नई दुनिया नजर आने लगी।

देशके शासनमें प्रजाका हाथ रहनेसे देश कितना सुख-सम्पन्न हो सकता है, यह उसे साफ-साफ परिलक्षित हो गया—खास कर फ्रांसमें क्रांतिके कारण लोगोंका जीवन कितना सुखमय हो गया था—देशने कितनी तरक्की की थी, जिसकी अबतक उसने कहानीमात्र सुनी थी, उसे अपनी आखों देखा और देखकर उसके हृदयमें हूक-सी उठने लगी कि हमारा देश इतना सुख-सम्पन्न न हुआ। "दुःख-शोकसे परिप्लावित" अपने देशकी दुर्दशापर गौर करके उसे असह्य वेदना मालूम पड़ने लगी और उसने अपने मनमें यह संकल्प कर लिया कि येनकेन-प्रकारेण रूससे ज़ारशाही

का अन्त करेंगे; क्योंकि यह सबका दृढ़ विश्वास था कि रूसकी दुरवस्थाका एकमात्र कारण ज़ारका मनमाना शासन है। फ्रांससे लौटती हुई सेनाके प्रत्येक मनुष्यके—खासकर नौजवान अफसरों के हृदयमें देश-प्रेमकी आग सुलग रही थी। परिणाम यह हुआ कि रूसमें शीघ्र ही यत्र-तत्र राजनैतिक परिषदें कायम हो गयीं, जिनमें देशकी तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितिपर वाद-विवाद हुआ करता था और वहांके प्रचलित शासनको बदलनेके उपाय सोचे जाते थे। जारशाहीका किन उपायोंसे अन्त किया जाय—यह उन परिषदोंके सम्मुख मुख्य प्रश्न था।

रूसके तत्कालीन शासन-विधानमें परिवर्तन चाहनेवालोंके दो दल थे—एक वह, जो सिर्फ सुधारका पक्षपाती था और दूसरा वह, जो जारशाहीका मूलेच्छेद ही करना चाहता था। प्रारम्भमें ये दोनों दल—नर्म और गर्म—मिलकर काम करते थे, पर कुछ दिनोंके बाद वे अलग हो गये। गर्म दलवालोंने दो नई सोसाइटियां कायम कर लीं—'उत्तरीय' और 'दक्षिणीय'। दोनोंमें फौजके बड़े-बड़े पदाधिकारी सम्मिलित थे। इनके अलावा और भी बहुतसे बड़े-बड़े लोगोंकी सहानुभूति इनके साथ थी—यहांतक कि ज़ारके खास स्टाफके कुछ लोग इनमें शामिल थे। पर इस आंदोलनके जीवन-प्राण दो महान् व्यक्ति थे—'पेस्टल' और 'रिलीफ'। पेस्टल फौजके कर्नल थे और रिलीफ कवि थे। इन दोनोंमें भी रिलीफकी अपेक्षा पेस्टलका प्रभाव ज्यादा था। उनके ही उद्योग और प्रभावके कारण रूसके जमीन्दारोंके नौजवान लड़के, जो पेस्टलको आदर और

विश्वासकी दृष्टिसे देखते थे, और फिर इस आन्दोलनमें शामिल हुए। अबतक जारशाहीका विरोधी-दल अपना लक्ष्य निश्चित न कर पाया था। पेस्टलके आते ही उसका उद्देश्य साफ हो गया। ज़ारशाहीका विनाश और जनसत्ताकी स्थापना, यही उसका ध्येय हुआ और इस ध्येय-पूर्तिके लिये उसने जारके खिलाफ खुली बगावत करनेकी सोची। पहले तो कुछ लोग इस प्रस्तावके बिलकुल विरुद्ध थे, पर आगे चलकर सभीकी एक राय हो गयी और सर्व-सम्मतिसे यह निश्चय हुआ कि जारशाहीके संहारका विपुल प्रयत्न किया जाय। उन्होंने यह भी निश्चय किया कि अगर उन्हें इस प्रयत्नमें सफलता प्राप्त हो गयी, तो रूसमें जबतक जनसत्ताकी नींव दृढ न हो जाय, तबतक देशका शासन-सूत्र एक डिक्टेटरके हाथमें रहेगा। कुछ लोगोंका यह विश्वास था कि रूसमें जनसत्ताकी संस्थापना जारशाहीका अन्त होनेपर ही हो सकेगी; पर दूरदर्शी पेस्टलकी धारणा इसके विपरीत थी। वह यह पूरी तरह महसूस करते थे कि रूसमें जारशाहीके बाद एक उथल-पुथलका जमाना आयगा, जिसके लिये कुछ दिनोंके लिये ही सही, एक डिक्टेटरका होना आवश्यक होगा।

रिलीफ क्रान्तिकारी कवि थे और पेस्टलसे किसी क़दर कम दृढ़ न थे। उनकी जोशीली कविताएँ और कहानियाँ देश और स्वतन्त्रताके प्रेमसे ओत-प्रोत होती थीं, सुननेवालोंकी नसोंमें जान ला देनेवाली थीं। उनकी क्रान्तिकारी कविताएँ, कहानियाँ और राजनैतिक लेख पर्चोंके रूपमें छाप-छापकर स्कूल और कालेजोंमें

बाँटे जाते थे। रिलीफ ही "दक्षिणीय सोसाइटी" के सवसर्वा थ, यद्यपि नामके लिये प्रिन्स टुबेस्काइ इसके मनोनीत सभापति थे।

अवसर बीता जा रहा था, संगठन काफी हो गया था। अब काम करनेका समय आया। दक्षिणीय संघका प्रचार फौजमें और उत्तरीयका धनीमानी लोगोंके बीच पूर्णरूपसे हो गया था। १८२४ में पेस्टलने सेन्ट पिटसवर्ग जाकर दक्षिणीय और उत्तरीय-दोनों संघोंका एकीकरण करके उन्हें एक ही कार्यकारिणी समितिके अन्दर ला दिया। वह ज़ारके वंशका एक ही दिनमें मूलोच्छेद कर देना और सिनेट तथा धर्म महासभा (*The Holy Synod*) को पराजित करके उन्हें प्रजातन्त्रकी घोषणा करनेको मजबूर करना चाहते थे। प्रजातन्त्रकी स्थापना होते ही सभी बड़े-बड़े अफसरोंको बर्खास्त करके उनकी जगह क्रान्तिकारी दलके लोगोंको नियुक्त करनेकी उनकी इच्छा थी, पर अभी वह सबको पूरी तरह राजी न कर पाये थ कि उन्हें अचानक सेन्ट पिटसवर्गसे हट जाना पड़ा। दूसरा कोई उपाय न देखकर उन्होंने यह निश्चय किया कि १८२६ के आरम्भमें ही कार्यक्रम निश्चित करनेके लिये एक सभा बुलायी जाय।

इधर-उधरकी बातोंमें समय नष्ट न कर यदि उन्होंने तत्काल अपना काम शुरू कर दिया होता, तो बहुत संभव था कि वे सफल हो जाते, क्योंकि ज़ार उन दिनों बेखौफ हो रहे थे। उन्हें इस षड्यन्त्रकी खबर भी न थी और इस षड्यन्त्रमें फौजके बड़े-बड़े पदाधिकारियोंके शामिल होनेके कारण उनकी पहुंच जारके निवास

स्थानतक बिना खौफ और खतरेके हो सकती थी। जारके खास दरबारमें क्या बात होती थी, जार कब कहाँ रहते थे और क्या बोलते थे—इत्यादि सभी बातोंका पता षड्यन्त्रकारियोंको मिला करता था। फिर उनके लिये जार तथा कमाण्डर-इन-चीफ प्रिन्स बिटगेन्सतीन आदि बड़े-बड़े फौजके जेनरलोंको गिरफ्तार करके एक-दो दुर्गोंपर कब्जा कर लेना कोई मुश्किल न था। पेस्टलकी स्कीम भी ऐसी ही थी। उत्तरीय और दक्षिणीय दोनों ही संघ इस बातके लिये तैयार थे कि जार अलेक्जेण्डरको किसी तरह निकलने न दें, पर कुछ तो उनकी दोलाचल-चित्तवृत्तिसे और कुछ देव-दुर्विपाकसे पूरा न हो सका, मनकी मन हीमें रह गयी। १८२५ के अन्तमें एकपर एक कुछ ऐसी आकस्मिक घटनाएँ होती गयीं कि वे अपनी स्कीमको काममें न ला सके और उनके सारे मनसूबे दिलहीमें रह गये। सर्वप्रथम यह खबर मिली कि जार अलेक्जण्डर प्रथमकी मृत्यु हो गयी और फिर दक्षिणीय संघका पता लग जाने तथा कन्सटेटाइनके गद्दी-त्याग देनेके समाचार मिले और साथ ही यह अफवाह उड़ी कि उनके छोटे भाई निकोल्स गद्दीपर बैठने वाले हैं, क्योंकि ज़ार अलेक्जण्डरने मरते समय कन्सटेटाइनके बदले निकोल्सको ही वारिश करार दिया है, मानों रूस उनकी निजकी सम्पत्ति हो।

गद्दीपर कौन बैठे, इस प्रश्नको लेकर सारे रूसमें तहलका मच गया। इस हलचलके समय क्रान्तिकारी कुछ निश्चय न कर सके, कि क्या करना उचित है। सारी स्कीमके उलट-पुलट हो जानेके

कारण कुछ लोग तो किंकर्तव्यविमूढ़-से हो गये, पर अन्तमें सबने यह निश्चय किया कि यथाशीघ्र खुली बगावत कर दी जाय। तत्पश्चात् जो होना होगा, होगा।

१२ दिसम्बर १८२५ को प्रिन्स टुवेस्कोइ अभी अनिश्चित अवस्थामें थे, जबकि रिलीफने अपने जेबसे एक पत्र निकालकर दिखलाया और कहा कि फौजके एक नये अफसरने हमलोगोंका भण्डाफोड़ ज़ार निकोल्सके समक्ष कर दिया हैं, अतएव हमलोगोंको बिना विलम्बके बगावत कर देनी चाहिये। मरना निश्चित है, फिर शस्त्र लेकर ही क्यों न मरें?

क्रांतिकारी यह खूब समझते थे कि इस बगावतसे फिलहाल कोई फायदा न पहुंचेगा, पर साथ ही उनकी यह दृढ़ धारणा थी कि उनके इस बलिदानसे भविष्यमें पूरा लाभ होगा; उनके खूनकी एक-एक बूंद रूसकी भावी सन्तानको जारशाहीके विरुद्ध लड़नेको उत्साहित करेगी। इसी सद्विचारसे प्रोत्साहित होकर प्रिन्स ओडोस्कीने विद्रोहके एक दिन पहले अपने मित्रों और सम्बन्धियोंसे विदा लेते समय कहा था:—"हम लोग मृत्युके निकट हैं, पर यह कितनी श्रेष्ठ मृत्यु है।"

१४ दिसम्बरके प्रातःकाल पल्टनोंको निकोल्सके प्रति राजभक्तिकी कसम खानेकी आज्ञा दी गयी। षड़यन्त्रकारियोंने अच्छा मौका देखकर मास्को रेजिमेण्टके सिपाहियोंको जाकर भड़काया और उनमेंसे कुछ प्रमुख व्यक्तियोंने उनका नेतृत्व ग्रहण करके उनकी ओरसे दो माँगें पेश कीं—कन्सटन्टाइनका राज्याभिषेक और

जनसत्तात्मक राज्यव्यवस्था। निकोल्सकी ओरसे बहुत चेष्टा की गयी कि वे उसके प्रति राज्यभक्तिकी कसम खा लें, पर उन्होंने उनकी एक न सुनी और अपनी माँगपर डटे रहे। अन्तमें निकोल्सने स्वयं बाहर निकलकर उनपर गोली चलानेकी आज्ञा दी, तोपें दागी गयी और शाम होते-होते खूनकी नदी बह चली। पेस्टल इत्यादि इसके पहले ही गिरफ्तार हो चुके थे। निकोल्सने, जो जीवन भर हृदयहीनताके लिये विख्यात् रहा, अपने विरोधियोंके साथ बड़ा क्रूरतापूर्ण बदला लिया। वे हाईकोर्टके सामने पेश किये गये और उन्हें फाँसीकी सजा मिली। पेस्टल और रिलीफने सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर लेकर इस बातकी चेष्टा की कि उनके और संगियोंके प्राण बच जायँ। रिलीफने जजको सम्बोधित करके कहा:—"यदि मैं चाहता, तो सारे आन्दोलनको रोक सकता था, पर मैंने ऐसा न करके इसे और भी आगे बढाया और हर आदमीको बगावत करनेकी राय दी। २६ दिसम्बरकी सारी घटनाके लिये मैं ही जिम्मेवार हूं और मुझे—सिर्फ मुझे ही—आपको मृत्युदण्ड देना उचित है।" पर उनकी एक न सुनी गयी। दया दिखलानेका काम हाईकोर्टने जारके ऊपर छोड़ा। ज़ारने पेस्टल, रिलीफ आदि मुख्य व्यक्तियोंकी सजा—मृत्युदण्ड—तो बहाल रखी, पर औरोंको जीवन भरके लिये देश-निर्वासनका दण्ड दिया और वे साइबेरियाकी खानोंमे काम करनेके लिये भेज दिये गये। वहाँके उनके दुःखमय जीवनकी बातें तथा उनकी करुणात्मक कहानियाँ सुनकर आज भी आँखोंमें आँसू आ जाते हैं।

क्रान्तिका एक अनन्य उपासक

'दिसम्बरी-आन्दोलन'का दमन और शहीदों की अस्थियोंपर सिंहासन रखकर ज़ार निकोल्सने शासनकी बागडोर अपने हाथमें ले ली थी और कुछ ही दिनोंमें जारशाहीकी निरंकुशताका नग्न-रूप संसारको दिखलाया था। कुछ दिनोंतक ऐसा प्रतीत हुआ कि रूससे स्वाधीनताके विचार सदाके लिये विदा हो गये, स्वातंत्र्य-सूर्यकी किरणें इस देशमें कभी प्रवेश न पा सकेंगी। पर शीघ्र ही यह धारणा गलत निकली और शहीदोंके भस्मावशेषके अन्दर से स्वाधीन विचारोंका पौधा ऊपर निकल आया। देशके नव-युवक-समुदायने पुनः आज़ादीका सवाल उठाया और ज़ारके खिलाफ़ मंत्रणाएँ होने लगीं। इस बार सेंट पिटसवर्गकी अपेक्षा मास्को इस कामके लिये अधिक उपयुक्त स्थान समझा गया, क्योंकि नवनिर्मित राजनैतिक पुलिसकी तीक्ष्ण आँखोंसे वह दूर था। अलेक्जैण्डर हर्ज़ेनका नाम इस सम्बन्धमें विशेष उल्लेखनीय है; क्योंकि उनके विचारोंका भविष्यके क्रान्तिकारियोंपर—खास कर निहिलिस्टोंपर बड़ा प्रभाव पड़ा। दिसम्बरी-आन्दोलन और 'निहिलिज्म'के बीच वह श्रृङ्खलाके समान हैं। अलेक्जेण्डर हर्ज़ेन-का जन्म मास्कोके एक धनी जमीन्दार परिवारमें, २५ मार्च ,को हुआ था। घरपर उनकी शिक्षा-दीक्षा बड़ी अच्छी

हुई, रशियन, जर्मन और फ्रेञ्च पढ़ानेके लिये अलग-अलग शिक्षक मुकर्रर किये गये थे और थोड़ी उम्रमें ही उन्होंने इन भाषाओंकी काफी योग्यता हासिल कर ली। रशियन और फ्रेञ्च पढ़ानेके लिये जो शिक्षक मुकर्रर थे, उनमेंसे एक तो उन्हे रिलीफकी जब्त कविताएँ छिपे-छिपे पढ़नेको दिया करते थे और दूसरे जो स्वयं प्रजातन्त्रवादी थे और फ्रांससे निकाले हुए थे, फ्रांसकी क्रान्तिकी कथाएं सुनाया करते थे। परिणाम यह हुआ कि बचपनसे ही वह क्रांतिवादी हो गये। कहावत है कि 'होनहार बिरवानके होत चीकने पात'। हर्जेनने भी १८ वर्षकी उम्रमें एक लेख लिखकर अपनी अद्भुत प्रतिभा तथा अपने उदार विचारोंका पता दिया था और मानव-जातिके लिये कष्ट सहनेकी इच्छा प्रकट की थी। उसी उम्रमें वह मास्कोके विश्वविद्यालयमें दाखिल हुए और एक छात्र-मण्डल कायम किया, जिसमे रूसके प्रसिद्ध समालोचक बायलिन्सकी और प्रसिद्ध क्रातिकारी बकुनिन प्रमुख मेम्बर थे। १८३३ में हर्जेनने डिग्री हासिल की और एक पदक भी पाया। उन दिनों पश्चिमीय यूरोपमें क्रांतिकी धूम मची हुई थी और इसकी खबर मास्कोमे भी पहुंचा करती थी। मास्को विश्वविद्यालयका छात्र-मण्डल उन समाचारोंको सुनकर प्रोत्साहित हो रहा था, यहातक कि एक दिन जब कि विश्वविद्यालयके किसी कमरेमे कुछ छात्र एकत्र होकर खान-पान कर रहे थे, एक छात्रने आवेशमें आकर जार निकोलसकी मूर्तिको, जो उस हालमें रखी हुई थी, तोड़ डाला। फल यह हुआ कि इस समाचारको

सुनकर पुलिसके कान खड़े हो गये और उसने कई छात्रोंको गिरफ्तार कर लिया। उसके बाद ही इसी जुर्ममें हर्जेनकी भी गिरफ्तारी हो गयी, यद्यपि वह उस दिन वहां मौजूद न थे। उनके घरकी तलाशी हुई, जिसमें 'सोशलिज्म' पर कई पर्चे और पुस्तकें मिलीं, जिसके कारण वह मास्कोसे निर्वासित हो गये।

१८४० में उन्हें मास्को लौटनेकी अनुमति मिली और वह मास्को लौट आये, पर यहां अधिक दिनोंतक न ठहर सके। रूसी सरकारको मास्को जैसे स्थानमें, जो सुशिक्षित व्यक्तियोंका केन्द्र था, हर्जेनकी उपस्थिति अच्छी न जॅची। एक सालके लिये वह फिर मास्कोसे निर्वासित हो गये। निर्वासनकी अवधि पूरी होनेपर पुनः मास्को लौट आये, पर यहां रहकर अपने विचारोंका प्रचार करना उनके लिये कठिन ही नहीं, असम्भव था। अतएव रूस छोड़कर पश्चिमी यूरोपके किसी देशमें जाकर वहींसे सुधारके लिये आन्दोलन करना उन्होंने श्रेयस्कर समझा और १८४७ में अपने पिताकी मृत्युके बाद वह पेरिसके लिये विदा हो गये।

पेरिस पहुंचते ही उनकी जान-पहचान वहांके अधिकांश प्रमुख व्यक्तियोंसे हो गयी, जिनमें प्राउधनका नाम विशेष उल्लेखनीय है। वह उन दिनों राष्ट्रीय महासभा (*National Assembly*) के सदस्य और एक क्रांतिकारी पत्रके सम्पादक थे। लुइ नेपोलियनके, जो वहांके प्रजातन्त्रके सभापति निर्वाचित हुए थे, खिलाफ लिखनेके कारण वह पत्र हर्जेनके पेरिस पहुंचनेके कुछ ही

दिनोंके बाद गवर्नमेण्ट द्वारा बन्द कर दिया गया था और प्राउ-धनको तीन वर्षके लिये कारावासका दण्ड मिला। प्राउधनने जेलसे ही एक पत्र निकालनेकी ठानी, पर उसके लिये उनसे २४,००० फ्रैंककी जमानत मागी गयी। हर्जेनने तत्काल अपने पाससे यह रक़म अदा कर दी और अखबार २० दिसम्बर १८४९ को निकल गया। गवर्नमेण्टने आरम्भसे हो इस अख-बारके साथ सख्तिया करनी शुरू कीं; १८५० मे उसे भी बन्द हो जाना पड़ा। उसी वर्षके जून महीनेमें हर्जेनको भी फ्रांससे निकल जानेकी आज्ञा मिली और वह स्विट्जर्लैण्डके लिये रवाना हो गये।

पेरिसमें रहते हुए हर्जेनकी प्रसिद्ध रूसी उपन्यासकार इवान तुर्गनेवके साथ खासी दोस्ती हो गयी और वह बराबर इनके घरपर आया-जाया करते थे। पेरिसमें वस्तुतः हर्जेनका घर अन्यान्य देशोंके सुधारवादियोंका क्लब हो रहा था। हर्जेन आनन्दके साथ उनसे मिलते और उनका आतिथ्य-सत्कार किया करते थे, समय पड़नेपर आर्थिक सहायता भी देते थे। आस्ट्रियाके एक पत्र-सम्पादकने उनकी मृत्युके बाद लिखा था—

"हर्जेनके साथ मेरा परिचय १८४८ के दिसम्बर महीनेमें कविवर हर्वेगके घरपर हुआ था। हर्जेनकी उम्र उस समय लगभग ३५ की होगी। वह देखनेमें सुन्दर थे और दूसरोंके साथ उनका व्यवहार अत्यन्त शिष्ट था, उनका वैज्ञानिक ज्ञान भी पहले दर्जेका था। लक्ष्मीकी उनपर खास कृपा थी, उन दिनों उनकी

वार्षिक आय प्राय. १५००० की थी। उनका घर अन्य देशोंके निर्वासित व्यक्तियोंके लिये सदैव खुला रहता था। वहां आप जर्मनी, इटली, रूमानिया, सर्विया, हंगरी आदि सभी देशोंके देश-निर्वासित व्यक्तियोंके साथ मिल सकते थे। प्रतिदिन प्रायः बीस आदमी उनके साथ भोजन किया करते थे। हर्जेनके घरमें प्रवेश पानेके लिये किसी किस्मकी प्रशंसा अथवा परिचय-पत्रकी दरकार न थी। हजारों रुपये वह इन देश-निर्वासितोंकी सहायता-में खर्च किया करते थे। मेरे ही द्वारा उन्होंने अनेक शरणार्थी व्यक्तियोंको, जिन्हें वह केवल नाममात्रसे जानते थे, आर्थिक सहायता पहुंचायी थी। इनमें कुछ तो ऐसे भी थे, जिनका सारा खर्च उन्होंने अपने ऊपर उठा रखा था। आस्ट्रियाके दो निर्वा-सित व्यक्तियोंकी स्त्रियोंका प्रसव-काल उनके ही घरमें बीता था, क्योंकि उनका अपना घर इस कामके लिये उपयुक्त न था। जर्मनीके प्रसिद्ध ग्रन्थकार, फ्रेडरिक कैथ, देश निर्वासित होकर पेरिस पहुंचे थे और अपने पास जीवन-निर्वाहके लिये एक कानी कौड़ी भी न रहनेके कारण वे अत्यन्त कष्टमें पड़े हुए थे। हर्जेनने यह सोचकर कि आर्थिक सहायताका प्रस्ताव उन्हें पसन्द न पड़े, उनसे प्रस्ताव किया कि आप मेरे बच्चोंके शिक्षक हो जाइये, जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया। पर वह शिक्षक नाममात्रके ही थे, क्योंकि बच्चोंके पढ़ानेके लिये शिक्षक तो पहलेसे ही मुकर्रर थे। मैं इस तरहके और भी अनेक वृत्तान्त बता सकता हूं, जिनसे हर्जेनकी इस प्रकारकी अनेक चित्त-वृत्तियोंका पता चल सकता है।"

उन्हीं दिनों हर्जेनको एक पारिवारिक क्लेशका अनुभव करना पड़ा। उनके परमप्रिय मित्र हर्विग (जर्मन कवि) के साथ उनकी स्त्री अलेक्जेड्रोसनाका—जो अतिशय सुन्दरी और सुकुमार थी—प्रेम हो गया और वह उसके साथ भाग गयी। दो वर्ष तक वह उनके साथ रही पर अन्त में, जैसा कि बहुधा हुआ करता है, प्रेम-बन्धन ढीला पड़ जाने तथा दुर्गति और सन्तापके आरम्भ होने पर हर्जेनकी शरणमें लौटी और उनसे क्षमा-याचना की। हर्जेनने तत्काल उसे क्षमा-दान देकर अपने घरमें रख लिया। वह स्त्री-जातिकी स्वतन्त्रताके प्रबल समर्थक थे, इस घटनासे उनके इस विचारमें जरा भी परिवर्तन न हुआ। यह उनके हृदय-औदार्य्य का परिचायक है।

१८५२ मे वह लन्दन आये और वहाँ उन्होंने एक रशियन प्रिण्टिङ्ग प्रेसकी स्थापना की। तभीसे उस क्रान्तिकारी-साहित्यके प्रकाशनका आरम्भ हुआ, जो रूसमें गुप्त रूपसे बाँटा जाता था। कुछ ही दिनोंमें वह रूसके सुधारवादियोंके गुरु हो गये। रूसके सुधारवादी बराबर लन्दन आकर उनसे परामर्शकरते थे और रूसमें कहाँ क्या हो रहा है, इसकी खबर दे जाते थे। १८५७ मे उन्होंने "*Kolokol*" (घण्टा) नामक एक अखबार निकाला,जिसका रूसमें खूब प्रचार हुआ—यहाँतक कि स्वयं जार भी उसे लेकर पढ़ा करते थे। रूसके बड़े-बड़े लोग गुप्त रूपसे इसमें लेख लिखा करते थे और ज़ार तथा रूसी सरकारके कारनामोंके तथा अफसरोंके आचरणकी आलोचना, ज़ो रूसमे नहीं की जा सकती थी, किया करते थे।

पेरिसकी तरह लन्दनमें भी हर्जनके घरपर उस समयके प्रमुख सुधारक अथवा स्वातन्त्र्यवादी इकट्ठा हुआ करते थे। गैरिबाल्डी, मैज़िनी, ओरसिनी, सफी इत्यादि सभी उनकी मेहमानदारी कबूल कर चुके थे और इनके साथ इनकी गाढ़ी मित्रता हो गयी थी। गैरिबाल्डी और मेजिनीके बीच जो मनोमालिन्य हो गया उसको हर्जेनने ही मिटाया था।

वार्सा मैसकर (वार्सा की हत्या) के समय गैरिबाल्डीने टुरिनसे १३ अप्रैल १८६१ को एक खत हर्जेनके नाम लिखा था, वह पत्र यों है—

प्रिय हर्जेन,

अभी अभी ज़ारने दासोंको जो मुक्त किया था, उसकी खबर सारे यूरोपने आनन्द और प्रशंसाके साथ सुनी थी। जिस सम्राट के मस्तिष्ककी यह योजना है और जिसने इस महान् कार्यको पूरा किया है, उसने अपने आपको मानव जातिके श्रेष्ठतम उपकारकोंकी श्रेणीमें पहुंचाया है, पर अब मुझे यह कहते हुए अत्यन्त दुःख है कि उस श्रेष्ठ कार्यके ऊपर बेकसूरोंके खूनके दाग आ पड़े। अब इस अवसरपर जिन लोगोंने दास-मुक्तिपर हर्ष प्रकट किया था, उनका यह परम कर्त्तव्य है कि वे इन नृशंस कार्यकर्ताओंकी जोरदार शब्दोंमें निन्दा करें। आप अपने पत्र द्वारा अभागे, किन्तु वीर पोलोंके प्रति इटलीके सारे राष्ट्रकी सहानुभूति पहुंचाइए तथा उन वीर रूसी सैनिकोंके पास जिन्होंने पोपफकी तरह यह सोचकर कि उन्हें फिर मानव जातिके रक्तसे लाल न करना

पड़े, अपनी तलवारें तोड़ डाली हैं, हमारी कृतज्ञता पहुंचा दें। साथ ही इस घृणोत्पादक हत्यारेके प्रति सारे यूरोपके राष्ट्रोंकी निन्दाकी घोषणा कर दें।"

मेजिनीके संग भी हर्जेनकी घनिष्ट मैत्री हो गयी थी और यद्यपि उनके राजनैतिक और धार्मिक विचारोंमें समानता न थी, एक दूसरेको श्रद्धा और प्रेमके भावसे देखते थे। हर्जेन सोशलिस्ट तथा धार्मिक स्वतन्त्रताके खिलाफ और सनातनधर्मी थे, पर इससे उनके बीच कभी मनोमालिन्यतक न आया और कुछ दिनोंतक तो वे दोनों मिलकर काम करते रहे। हर्जेनने एक बार अपने पाससे २०० पौण्डकी सहायता मेजिनीको इटलीके स्वातन्त्र्य-युद्धके लिये दी थी। जीवनके अवसानकालके समीप पहुंच कर मेजिनीने हर्जेनको लिखा था—"परम प्रिय मित्र, नाइससे भेजा हुआ आपका कृपापत्र मिला......वे चाहे जो कुछ करें, हम लोग धीरे-धीरे इटालियन प्रजातन्त्रके समीप पहुंच रहे हैं और मैं अपना यह परम कर्तव्य समझता हूं कि यथाशक्ति इस इञ्जिनको हम उसकी पटरियोंपर चढ़ा दें, जब एक बार वह लाइनपर आ जमेगी, तो फिर उसे धक्का देकर आगे ले जानेवालोंकी कमी न रहेगी। मेरे स्वास्थ्यका संहार हो गया। मैं उस वृक्षके समान हूं, जो जड़ उखड़ जानेपर भी खड़ा है, पर जिसे हवाका एक झोंका किसी दम भी गिरा सकता है। × × × × × प्रति वर्ष मेरे मित्र एक एक कर चले जा रहे हैं और रह-रह कर मुझे ओलाएनके इस पदका स्मरण हो आता है—

और, बीतते हुए वर्ष के साथ
सुनता मैं धीमी आवाज;
यही एक क्यों करता गान ?"

गैरिबाल्डी और मेज़िनीके सिवा विक्टर ह्यूगो, लुइ ब्लान्क, कोशथ, कार्लाइल आदिके साथ भी हर्ज़ेनकी घनिष्ट मैत्री थी। हर्ज़ेनको अद्भुत् लेखन-शक्ति प्राप्त थी और वह रशियन, जर्मन, फ्रेञ्च और इङ्गलिश भाषाओंमें समान रूपसे लिखा करते थे। उनके लेखोंका यूरोप तथा रूसकी जनता पर बहुत प्रभाव पड़ा था।

२६ जनवरी, १८७० को पेरिसमें उनकी मानवलीला समाप्त हुई। नाइसमें, कुछ दिनोंके बाद, उनके शरीरावशेष लाकर गाड़े गये और उनकी कब्र पर, उनके कुछ देशी और विदेशी मित्रोंकी सहायतासे, एक भावोत्पादक स्मारक मूर्ति भी बनायी गयी, जो अब भी वहाँ लोगोंको उस महान् व्यक्तिकी याद दिलाया करती है।

रूसमें पश्चिमीय स्वतन्त्रताके बीज बोनेवाले अलेक्जेण्डर हर्ज़ेन ही थे। उन्होंने प्राचीनताके बन्धनोंसे जकड़े हुए और म्रियमाण रूसमें जान ला दी, उसे एक नया प्रकाश दिखला दिया। उनके स्वतन्त्र विचारोंसे प्रभावित होकर पुरुषों और युवक-युवतियोंके एक नये प्रकारके संगठनको पीछे चलकर "निहिलिस्ट" दलके नामसे पुकारा जाने लगा।

वे अभागे दम्पति !

सन् १८७१ की बात है। रूसके एक सुदूर ग्राममें फ़ादर वसिली नामके एक पादड़ी रहा करते थे। उनके परिवारमें उनकी पत्नीके सिवा उनके कई पुत्र और पुत्रियां थीं। उनकी बड़ी कन्या का नाम सोनिया था। उसकी उम्र १६ वर्ष की थी और वह देखनेमें अत्यन्त सुन्दरी थी। बिआतकाकी धार्मिक पाठशालामें शिक्षा ग्रहण करके वह संटपिटसवर्ग जाकर डाक्टरी पढ़ना चाहती थी। सिआतकामें श्रीमती कुवशिन्सकाया नामक एक निहिलिस्ट महिलाके साथ उसका घनिष्ट सम्बन्ध हो गया था और उसके संसर्गसे उसके हृदयमें स्वतन्त्रताके भाव जागृत हो उठे थे। वह उच्च शिक्षा प्राप्त करके देश तथा समाजकी—विशेषकर रूसके गरीब किसानोंकी, जिनकी दुरवस्थाका हाल उसने अपनी अध्यापिका श्रीमती कुवशिन्सकायासे सुना था, सेवा करना चाहती थी। पर उसके मा-बाप उसके इस विचारसे सहमत न थे, स्त्रियोंको भला उच्च शिक्षासे क्या प्रयोजन ? वे वहींके एक धनी सज्जन से, जो वयसमे सोनियासे कहीं ज्यादा थे, इसका विवाह कर देना चाहते थे। किन्तु सोनियाको यह मंजूर न था। उसके हृदयमें

तो कुछ दूसरी ही आग जल रही थी। अतएव एक दिन जब फादर वैसिली अपनी पत्नीके साथ एक दूसरे गांवमें गये हुए थे, वह अपनी अपनी छोटी बहन ल्युबासे राय-मशविरा करके, एक किरायेकी गाड़ीपर सवार होकर भाग निकली। उसके कुछ मित्रों उसके राहखर्चके लिए कुछ रुपये-पैसे भी दे दिये।

विआतका नदीके तटपर वह उस समय पहुंची, जब सूर्य अस्ताचलको जा चुके थे और चारों ओर निविड़ अन्धकार फैल चुका था। सोनियाने मल्लाहोंसे बहुत प्रार्थना की कि उसको उसी समय पार कर दें, पर उसके लाख कहनेपर भी वे इसके लिये राजी न हुए। अन्तमें निरुपाय होकर उसने वहीं एक मल्लाहकी झोपड़ीमें रात बितानेकी सोची और झोपड़ीके एक कोनेमें अपना सामान रखकर लेट रही। मल्लाह तथा उसके परिवारके और लोग कुछ ही देरमें सो गये, पर सोनियाकी आंखोंमें नींद कहां? वह पड़ी-पड़ी अपने भविष्यके सम्बन्धमें सोचती-विचारती रही। पर अन्तमें वह भी नींदकी गोद जा पड़ी।

आधी रातके समय दरवाजेपर किसीके खटखटानेकी आवाज सुनाई पड़ी। मल्लाहने उठकर दरवाजेको खोला। द्वारके खुलते ही फादर वैसिली झोपड़ीके अन्दर आ घुसे। चारों ओर नजर दौड़ाकर उन्होंने सोनियाको तुरन्त ही पहचान लिया और उसके पास जाकर उसे जगाया और घर लौट चलनेको कहा। सोनिया उन्हें देखते ही निराश हो गई, उसके मंसूबों पर पानी गया। उसने रो-रो कर पितासे प्राथना की कि उसे छोड़ दें, जानें

दें, पर फादर वैसिली उसकी अनुनय-विनयसे जरा भी विचलित न हुए। अन्तमें निरुपाय होकर उसे घर लौट आना पडा।

घर लौट कर उसका जीवन और भी दुःखमय हो गया। मां बापकी उसके ऊपर कड़ी निगाह रहने लगी। वह एक क्षणके लिये भी अकेली नहीं छोड़ी जाती थी। समय-समय पर उसके ऊपर व्यङ्ग-बाण भी छोड़े जाते थे, विशेष कर जब बाहरका कोई आदमी आया रहता था। सोनियाके लिये यह घरेलू अत्याचार असह्य-सा हो उठा।

एक दिन फादर वैसिली सपत्नीक विआतका गये और अपने साथ सोनियाको भी लेते गये क्योंकि उसे घर पर अकेला खतरनाक था। सोनियाको उसके भाईके मकान पर, जो स्कूलमें शिक्षा प्राप्त कर रहा था, रखकर वे अपने गये। इतनेमें अवसर पाकर सोनिया श्रीमती मिलने चली गई। उनसे उसने अपना किया। श्रीमती कुवशिन्सकायाने उसको वचन दिया कि वह अपने निहिलिस्ट मित्रोंमेंसे झूठा दूल्हा खोज निकालेंगी और उसके साथ झूठा विवाह करा कर उसे मा-बापके अत्याचारसे बचा उनकी इन बातोंको सुनकर उसके आनन्दका ठिकाना न रहा. उस दिनसे उसके रहन-सहनमें घोर परिवर्तन हो गया। घरका काम-काज बड़े चावसे देखने लगी। सदैव प्रफुल्लित रहती। जिस पुरुषके साथ उसके मां बाप उसका विवाह करना चाहते थे,

उसके साथ उसके व्यवहारमें भी अत्यन्त परिवतन हुआ। अब वह उससे खूब प्रसन्नताके साथ मिलती मानों उसे चाहने लगी हो। फादर वैसिली और उनकी पत्नी सोनियाके इस व्यवहारसे बड़े सन्तुष्ट हुए। उन्हें आशा हो गयी कि अब वह इसके साथ विवाह करना मंजूर कर लेगी और भविष्यमें अपना घर-द्वार सँभालेगी, गृहस्थकी तरह रहेगी और अपने निहिलिस्ट खयालातको तिलाञ्जलि दे देगी। रूसमें उन दिनों निहिलिस्टोंकी संख्या धड़ाधड़ बढ़ रही थी। जहाँ-तहाँ क्रान्तिकारी-निहिलिस्ट-सोसाइटियोंकी स्थापना हो रही थी। अनियंत्रित शासन-प्रणाली-का नाश करना उन सबका उद्देश्य था, पर किन उपायोंसे इस उद्देश्यकी पूर्ति हो और फिर इस शासनके नष्ट हो जानेपर कौनसी शासन-प्रणाली कायमकी जाय, इसमें मतभेद था।

सेंट पिटसबर्ग आदि शहरोंमें जहाँ विश्वविद्यालयोंमें पढ़नेके लिये छात्र एकत्र हुआ करते थे, कुछ युवक-युवतियोंने मिलकर 'कम्यूनों' की सृष्टिकी थी, जिनमें शामिल होने वाले युवक और युवतियां साम्यवादके सिद्धान्तोंका अक्षरशः पालन करनेकी चेष्टा करती थीं। ऐसे ही एक 'कम्यून' का एक युवक मेम्बर, एक दिन सन्ध्या समय बैठा हुआ दो युवतियोंको, जो उसी 'कम्यून' की सदस्या थीं, एक पुस्तक पढ़कर सुना रहा था। उसी समय उस 'कम्यून' का एक दूसरा मेम्बर वहां आकर उपस्थित हुआ। उसने आते ही कहा कि मुझे श्रीमती कुबशिन्सकायाका एक खत अभी मिला है, जिससे सोनिया नामक एक लड़कीके झूठे विवाहके लिये

एक वरकी याचनाकी गयी है। उसने सोनियाके संबंधमें लिखी हुई सारी बाते सुना दीं। सबने उस खतकी बाते बड़े गौरसे सुनीं और सुनकर आपसमें परामर्श करने लगे कि सोनियाका उद्धार किस प्रकार किया जाय। यद्यपि उनके 'कम्यून' का यह उद्देश्य अवश्य था कि अपने राजनैतिक सिद्धान्तोंके लिए देश-निर्वासित अथवा कैदमें पड़े हुए या गृह-अत्याचारसे पीड़ित व्यक्तियोंका उद्धार किया जाय, पर सोनियाके सम्बन्धमें कुछ करना उस समय बड़ा कठिन जान पड़ा। बहुत काल तक इस सम्बन्धमें तर्क वितर्क होता रहा। अन्तमें सर्जियस सिनगव नामक एक युवकने, जो एक धनाढ्य जमींदारका लड़का था, उठ कर कहा कि मैं यह काम करूंगा और वह सोनियाका कृत्रिम दूल्हा बननेको तैयार हो गया। पर इस घटनाके बाद तुरन्त ही वह मज़दूरोंके बीच प्रचार-कार्यमें लग गया और अपनी इस प्रतिज्ञाको भूल-सा गया। उधर १८७१ के मार्च महीनेमें श्रीमती कुबशिन्सकाया स्वयं सेंट पिटसबर्ग आ पहुंचीं और मेडिकल कालेजमें गईं। उनके याद दिलाने पर सेंट पिटसबर्गमें एक "वार कौन्सिल" बुलाई गई, जिसमें सोनियाके उद्धारार्थ निम्न लिखित कार्य-क्रम निश्चित हुआ—

सिनगब, खूब ठाठ-बाटके साथ, फादर वैसिलीके घर जाकर अपनेको सोनियाका प्रेमी बतलावे और अपना परिचय इस प्रकार दे: "मैं एक धनाढ्य जमींदारका लड़का हूं, मेरा भविष्य मेरी योग्यता और वंश-मर्यादाके कारण अत्यन्त उज्ज्वल है। विआतकामें मेरा परिचय सोनियाके साथ उस समय हुआ था, जब वह

वहांकी धार्मिक पाठशालामें पढ़ा करती थी। वहीं हम दोनों प्रेम-बन्धनमें बँधे थे और वहीं मैंने सोनियासे विवाहका प्रस्ताव किया था, जिसे उसने सहर्ष स्वीकार कर लिया था।" सिन-गबके इस प्रकार आत्म-परिचय देते समय सोनिया वहाँ अक-स्मात् आ पहुंचे और अपने प्रेमीको देखते ही उसके हृदयसे जाकर लिपट जाय और "सर्जियस! आखिर तुम यहां आ गये" का उच्चारण करे। फिर वे दोनों एक दूसरेका बेसुध होकर आलिङ्गन करें। पर यह क्रिया उस दशामें की जाय, जब बाहरका कोई आदमी वहां मौजूद रहे, ताकि सोनियाके भावी पतिके आनेकी खबर शहर भरमें फैल जाय और फादर वैसिलीको अस्वीकार करनेका मौका न मिले। अगर वहां कोई दूसरा उपस्थित न हो, तो सिनगब वहां जाकर केवल सोनियाके साथ पाणिग्रहणका प्रस्ताव करे। फिर आगे जैसी परिस्थित्ति उपस्थित हो, वैसा वह अपनी बुद्धिके अनुसार काम करे।"

पर इस कार्य-सञ्चालनके लिए काफी धनकी आवश्यकता थी। एक तो यात्रा दूरकी थी, फिर सिनगबके लिए अपने आपको धनी दिखानेके लिए कुछ कीमती चीजें ले जाना भी आवश्यक था और सोनियाके लिये कुछ मूल्यवान उपहारोंकी भी आवश्यकता थी। पर 'कम्यून' के पास इतना धन कहां कि ये चीजें खरीदी जायँ?

सोनियाको एक पत्र द्वारा इन बातों की सूचना दे दी गई।

जिस गाँवमें फादर वैसिली रहा करते थे, वह काफी बड़ा था। यात्रियोंके ठहरनेके लिये वहाँ एक होटल भी था। सिनगबने

वहीं डेरा डाला और होटलके मालिकके यह पूछने पर कि वह कहां जा रहे हैं, कहा कि मुझे आगे नहीं जाना है, यहीं फादर वैसिलीसे मुलाकात करके लौटना है। वह इनकी बातोंको सुनते ही चिल्ला उठा कि 'बस, बस मैं समझ गया, आप सोनियाका पाणिग्रहण करना चाहते हैं।' छ बजेका समय समीप आते देखकर सुन्दर वस्त्रोंसे अलंकृत हो, सिनगब होटलवालेके साथ फादर वैसिलीके घर पहुंचा। कहीं भण्डा-फोड़ हो गया, तो मेरी क्या दशा होगी, यह सोच कर उसका हृदय कांपने लगा। बारमदेमें ही फादर वैसिलीसे मुलाकात हो गई। सिनगबने अपना परिचय दिया। फादर वैसिली, एक सज्जन पुरुषकी भांति, सिनगबके साथ खूब अच्छे ढङ्गसे पेश आये तथा उसे बैकठखानेमें ले जाकर बिठलाया, जहां पहलेसे एक और पादड़ी बैठे हुए थे। होटलका मालिक भी वहीं जाकर बैठा। फादर वैसिलीके साथ मिलते ही उनके सद्-व्यवहारके कारण सिनगबके हृदयसे घबराहट जाती रही।

सिनगबके उस कमरेमें बैठे हुए अभी दो-चार मिनट भी न हुए होंगे कि बगलवाले कमरेका दरवाजा खुला और सोनियाने कमरेमें प्रवेश किया। सोनियाके उस कमरेमें प्रवेश करते ही सिनगब उठ खड़ा हुआ और सोनिया 'सर्जियस! आखिर तुम आ गये।' कहती हुई उसके गलेसे लिपट गई। फिर वे दोनों एक दूसरेके अधरका अधीरतापूर्वक चुम्बन करने लगे। फादर वैसिली तथा उनके मित्र इस दृश्यको देखकर दंग रह गये मानों उन पर वज्रपात हो गया हो।

सोनिया सिनगबका हाथ पकड़ कर उसे बगलवाले कमरेमें ले गयी, जहां उसकी मां विस्तरे पर सिसक-सिसक कर रो रही थी। सिनगबने उसके हाथोंको चूम कर उससे चुप रहने तथा उसकी बातोंको सुननेकी प्रार्थना की, पर वह इतनी ज्यादा बेसुध हो रही थी कि सिनगबकी बातोंका उस पर कुछ भी असर न हुआ। वह बार-बार यही कहती रही कि 'तुम कौन हो ? तुम कौन हो ?' इतनेमें ही फादर वैसिली भी उस कमरेमें आ पहुंचे और करुणापूर्ण शब्दोंमें बोले, कि 'हा भगवन्। मैं यह क्या देख रहा हूं ?' सिनगबने कहा—'आप दुःखी न हों, मैं अभी इन सारी बातोंका स्पष्टीकरण कर देता हूं, जिससे आप समझ सकेंगे कि आपने अभी जो कुछ देखा है, वह भयका कारण नहीं।' फिर सिनगबने अपनी सारी कहानी उन्हें सुना डाली। फादर वैसिली ने उन सारी बातोंको सुनकर सिनगबको आश्चर्य और भयमें डालते हुए कहः—"हाँ, यह सब ठीक है, अगर जो कुछ आपने कहा है, वह सत्य हो! पर बात यह है कि मुझे यह शङ्का हो रही है कि आप कृत्रिम विवाहका अभिनय कर रहे हैं ?"

'कृत्रिम-विवाह'का नाम सुनते ही सिनगबके कान खड़े हो गये, घबराहट-सी आने लगी, पर बलपूर्वक अपने भावको छिपा कर उसने उत्तर दियाः—'पिता वैसिली! आप ऐसा कह कर मेरा घोर अपमान कर रहे है।'

वैसिली-परिवारके साथ दो-एक दिनोंमें ही सिनगबकी काफी घनिष्ठता हो गई, सब उसे प्यारकी दृष्टिसे देखने लगे। सोनियाकी

चार छोटी बहनें और उसका छोटा भाई तो उससे खूब ही हिल-मिल गये। वह भी उनका खूब मनोरंजन करता, जिससे सोनिया की माँ अत्यन्त प्रसन्न होती।

चौथे दिन फादर माइकेल और उनकी सुन्दरी भार्या एलिजवेथका वहाँ आगमन हुआ। कई दिनोंतक फादर वैसिली और उनकी पत्नीके साथ उन दोनोंकी मंत्रणा होती रही। अन्तमें तीसरे दिन सोनिया और सिनगबकी वहाँ बुलाहट हुई, जहाँ वे सभी एकत्र थे और फादर माइकेलने भावी पति-पत्नीको आशीर्वाद देकर यह घोषित किया कि सिनगबके साथ सोनियाका विवाह होगा।

शादीकी तैयारियाँ होने लगीं। इस सम्बन्धमें फादर वैसिली की इच्छाके अनुसार एक बार वियातका-यात्रा करनेका भी निश्चय हुआ, क्योंकि वहाँके विशप (बड़े पादरी) से वह अपने भावी दामादका परिचय कराना तथा उनसे आशीर्वाद लेना चाहते थे। उनका दूसरा आग्रह यह था कि सिनगबके पिताका भी तार द्वारा आशीर्वाद कराया जाय। सिनगबके लिये ये दोनों ही प्रस्ताव उलझनमें डालनेवाले थे। वियातकामें उसका बड़ा भाई कुछ वर्ष पहले राजनैतिक निर्वासितकी हैसियतसे निवास कर चुका था और वहाके गवर्नरकी पुत्रीके साथ शादी कर ली थी। फादर वैसिलीका उस गवर्नरके साथ परिचय था। कहीं बातों-ही-बातोंमें वह अपने भावी दामादका नाम ले ले तो ?

सिनगबके पिताका स्वस्ति-वचन मंगानेवाला प्रस्ताव भी उतना ही बाधक था। सिनगबने कहा था कि मेरे पिता सेण्ट पिटसवर्गमें आये हुए हैं और मेरे तथा अपनी पुत्र-वधूके आनेकी प्रतीक्षामें ठहरे हुए हैं। अब तार कहाँ दें और कैसे दें ? बहुत सोच-विचारके बाद सिनगबने तय किया कि सेण्ट पिटसवर्गको ही अपने भाईके पतेपर पिताके नाम तार दे दें। शायद वह मतलब समझ जायँ और पिताजीकी ओरसे जवाब दे दें। ऐसा हुआ भी और सेण्ट पिटसवर्गसे सिनगबके पिताका तार आया कि "मैं तुम्हें अपना आशीर्वाद भेजता हूं।"

फादर वैसिली, उनकी पत्नी, सोनिया और सिनगबने वियातकाके लिये प्रस्थान किया। वहाँसे घर लौटकर शादीकी खूब तैयारियाँ की गयीं। सिनगबने अपने साथ लाये हुए उपहारोंको पेश किया जिससे ससुरालवाले खूब प्रसन्न और सन्तुष्ट हुए। उन्हें देखकर यह किसीको सन्देह न रहा कि सिनगबके ऊपर लक्ष्मीकी खास कृपा है। दूर-दूरके लोगोंके पास निमंत्रण भेजे गये। घरकी स्त्रियाँ सोनियाके लिये कपड़े सीने तथा गाने-बजानेमें व्यस्त रहने लगीं। कहते हैं, विवाहके अवसरपर वह सरकारी अफसर भी मौजूद था, जिसके साथ फादर वैसिली सोनियाको ब्याहना चाहते थे। वह इस दृश्यको देखकर अपने आँसुओंको न रोक सका, रोने लगा।

विदाईके समय सोनियाकी माँ सिसक-सिसक कर रोने लगी और रोते-ही-रोते अपनी पुत्री तथा दामादको बिदा किया।

ग्रामसे बाहर निकलकर सिनगबने सोनियासे कहा—अब मैं आप को आपकी स्वतंत्रतापर बधाई देता हूं। वह कुछ न बोली। केवल हाथ मिलाया।

"आप मुझसे सन्तुष्ट हैं न ?"—सिनगबने पुनः पूछा।

"हां, हां, मैं आपका अत्यन्त कृतज्ञ हूं।"—सोनियाने जवाब दिया।

१८७२ के नवम्बर महीनेके अन्तमें वे सेण्ट पिटसबर्ग पहुंचे। सिनगबने वहां जाते ही सोनियाको स्त्रियोंकी एक 'कम्यून' में भर्ती करा दिया। वह श्रीमती कुबशिन्सकायाकी देख-रेखमें रहने लगी।

यद्यपि सोनिया और सिनगबके बीच पति-पत्नीका सम्बन्ध न रहा, सिनगबका हृदय जब-तक अस्थिर हो उठता था, पर सोनियासे इस सम्बन्धमें कुछ कहना उसके लिये पापके समान था।

वे दोनों अधिक दिनतक सेण्ट पिटसबर्गमें नहीं ठहर सके। निहिलिस्ट-आन्दोलनने एक नया रूप धारण किया और नये वर्षके लिये एक दूसरा ही कार्यक्रम निश्चित हुआ। वह था ग्राम्य जनताके बीच राजनैतिक विचारोंका प्रचार करना। निहिलिस्ट स्त्री-पुरुष गाँवोंमे जाकर बड़े उत्साह और दृढ़ताके साथ अध्यापक, क्लर्क, लुहार, बढ़ई, नर्स आदिके कामोंमें लग गये और अपने इस पेशेकी ओटमें निहिलिस्ट विचारोंका प्रचार करने लगे। साथ ही ग्राम्य जनताके बीच यथासम्भव लिखने-पढ़नेका भी

विस्तार करने लगे। सोनिया और सिनगवने शुरूमें ही इस कार्यक्रमको अङ्गीकार करके एक ग्राम्य पाठशालामें नौकरी कर ली।

इस स्कूलका संस्थापक मार्टिनफ नामका एक व्यक्ति था, जिसने बूट बनानेके काममें भारी सम्पत्ति हासिल की थी और सेण्ट पिटसवर्गमें एक दूकान करके वहीं रहा करता था। ग्रैण्ड ड्यूक निकोल्ससे उसकी काफी घनिष्ठता हो गयी थी—ड्यूक निकोल्स उससे यदा-कदा ऋण लिया करते थे और इस घनिष्ठताके कारण उसकी इस ग्राममें बड़ी धाक थी। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, उक्त स्कूलका संस्थापक भी वही था और इस स्कूलके अध्यापक-अध्यापिकाओंको अन्य स्कूलोंकी अपेक्षा कहीं ज्यादा वेतन मिलता था, उनके ठहरनेके लिये वासस्थान भी बने हुए थे। वह हल्केके सरकारी अधिकारियोंके साथ भी हेल-मेल रखता था और समय-समयपर उनकी पाकिट गर्म कर दिया करता था। इसका फल यह था कि इस गाँवमें वह जो चाहता था, उसके खिलाफ कोई अँगुली उठानेवाला न था। गाँवकी सुन्दर स्त्रियों तथा लड़कियोंके साथ वह मनमाना व्यवहार करता था।

थोड़े ही दिनोंमें सिनगब और सोनियाकी उस गाँवमें ख्याति हो गयी तथा लोग उनके पाण्डित्यकी प्रशंसा करने तथा उन्हें आदरकी दृष्टिसे देखने लगे। कुछ ही दिनोंमें उस गाँवके लड़के और लड़कियाँ धड़ल्लेके साथ पढ़ने-लिखने लगीं। गाँववाले यह

देखकर आश्चर्य-चकित हो गये और सिनगबसे आकर अनुरोध किया कि आप हमें भी लिखना-पढ़ना सिखला देवें। सिनगबके तो यह प्रस्ताव मन लायक ही था। वह उन्हें पढ़ाने लगा। सोनिया भी साथ देने लगी और पढ़ानेके बहाने वे दोनों उनके बीच अपने क्रान्तिकारी भावोंका प्रचार करने लगे।

सोनिया और सिनगब साथ रहते हुए भी एक दूसरेसे अलग रहते थे। पर एक दिन सन्ध्या समय सोनिया अपने प्रेम भाव-को छिपानेमें असमर्थ होकर बोल उठी--मेरा तुमसे प्रेम हो गया है और मुझमें अब इतनी शक्ति नहीं कि मैं इस भावको छिपा कर रख सकू। उसकी इस बातको सुनकर सिनगब आनन्दसे पागल हो उठा। आज उसे मुंहमांगी मुराद मिल गई, उसकी खुशीका ठिकाना न रहा, उस दिनसे वे दोनों बडे आनन्दके साथ समय बिताने लगे और दूने उत्साहके साथ अपनी ड्यूटी अदा करने लगे।

मार्टिनफ सेण्ट पिटसबर्गसे घर आया हुआ था और तरह-तरहके पाप-कृत्योंमे तल्लीन था। उस दिन एक बजे रातको उसने गांव भरके युवतियों तथा पुरुषोंको जगवाया और उन्हे आज्ञा दी कि पुरुष उसी वक्त मछलियां मारने जायं और युवतियां उसके मनोरंजनके लिये नाचे-गावें। दूसरे दिन वह शराबके नशेमें चूर एक वेश्याके साथ स्कूलके उस कमरेमें दाखिल हुआ, जिसमें सिनगब बैठा हुआ लड़कोंको पढ़ा रहा था। सिनगबने उसे उस दशामे देखते ही लड़कोंको छुट्टी दे दी और उन्हे घर भेज

दिया। सोनियाने जो बगलके कमरेमें लड़कियोंको पढ़ा रही थी, अपनी छात्राओंको छुट्टी देकर उन्हें भी घर रवाना कर दिया। मार्टिनफने इसे अपना अपमान समझा और गुस्सेमें आकर सिनगबके प्रति बुरे शब्दोंका प्रयोग कर डाला। अतएव दूसरे दिन वे दोनों स्कूलके कार्टरको छोड़ एक किसानकी झोपड़ी में जा बसे और वहीं रहने लगे। इधर मार्टिनफ उनपर झूठा मुकद्दमा करके उन्हें फँसानेका उद्योग करने लगा। पुलिसके एक अफसरने सिनगबसे जाकर कहा कि यह तो आप जानते ही हैं कि कमजोरको बलवान्के सामने बराबर झुकना पड़ता है, अतः आपके लिये यही बेहतर होगा कि आप मार्टिनफसे माफी माँग लें और यह झगड़ा तय हो जाय। सिनगबने उत्तर दिया कि मैंने तो कोई कसूर ही नहीं किया, माफी क्योंकर माँगू? मैं समझता हूं मार्टिनफको ही मुझसे क्षमा-याचना करनी उचित है।

अन्ततः मुकदमा चलानेकी सारी तयारियाँ हो गयीं और पुलिसके अफसरने आकर सिनगबका बयान लिया और मार्टिनफका बयान लेने लगा। एक कमरेमें वे दोनों आमने-सामने बैठे थे। दर्शकोंसे सारा कमरा ठसाठस भरा था। इतनेमें ही मार्टिनफ बोले—'खैर, बहुत हो चुका, सिनगब! अब हमलोग मिल जायं' और यह कहते हुए उसने सिनगबकी ओर हाथ बढ़ाया।

"अच्छी बात है, एवमस्तु! पर आप यह जानते हैं कि इस झगड़ेका सूत्रपात मैंने नहीं किया।" यह कहते हुए सिगनबने उससे हाथ मिला लिया, सुलह हो गई।

पर इसके बाद सिनगब और सोनियाने वहाँ और ठहरना उचित न समझा और वे सेंट पिटसवर्गको लौट आये।

सेंट पिटसवर्ग लौटकर उन्होंने मजदूरोंके बीच निहिलिस्ट विचारोंका प्रचार करना शुरू किया। सन १८७३ ई० के नवम्बर महीनेमें सिनगब गिरफ्तार कर लिया गया। तीन हफ्ते हवालात में रखे जानेके बाद वह पीटर और पालके फोर्ट्रेस (एक बड़ा जेलखाना) में भेज दिया गया और वहाँ वह दो वर्षोंतक तनहाई (Solitary Confinement) में रखा गया। फिर दो वर्षों तक हवालातमें रहना पड़ा। उसके बाद पुनः उस दुर्गकी खाक छाननी पड़ी। इसी बीच सोनिया भी गिरफ्तार कर ली गयी थी, पर कुछ दिनोंके बाद वह छोड़ दी गयी। १८७४ के मार्च महीनेमें उसे प्रति शुक्रवारको अपने पतिसे मिलने की आज्ञा मिली और वह हर शुक्रवारको सिनगबसे मिलने लगी। सिनगबकी जानमें जान आई।

मुलाकातके वक्त जेलका एक आदमी वहाँ मौजूद रहता, जो उनकी बातोंको सुना करता था। इसपर भी सोनिया उसे सप्ताह भरके महत्वपूर्ण समाचार बतला देती थी। ऐसा करनेका सर्व-श्रेष्ठ साधन चुम्बन था। कागजके एक टुकड़े पर वह खबरें लिख कर लाया करती और चुम्बन-कालमें उसे अपने मुँहसे सिनगब के मुँहमें डाल देती। उसके ऊपर लीड (lead) लगा रहता था जिससे वह नुकसान नहीं होता था। इसी तरह वह सिनगबके मुँहमें कोरे कागज तथा पेन्सिलका छोटा टुकड़ा भी डाल देती थी।

दूसरे सप्ताहमें सिनगव अपने जी की बातें उसपर लिख कर सोनियाके मुँहमें डाल दे। कागज लपेट कर गोल बना दिया जाता था, ताकि उसपर बहुत-सी बातें लिखी जा सकें। इस प्रकार उन दोनोंकी बीच चिट्ठी-पत्री हुआ करती थी, पर एक दिन एक दूसरा कैदी ऐसा ही करता हुआ पकड़ा गया और तबसे यह इन्तजाम किया गया कि मिलनेवाले तथा कैदीके बीच एक बड़ी-सी टेबुल रहे, ताकि वह इस तरहका अधिकारियोंकी आँखोंमें धूल झोंकनेवाला कोई काम न कर सके।

पूरे चार वर्ष आठ महीने तक सिनगव जेलखानोंमें सड़ता हुआ अपने मुकदमेकी सुनवाई की प्रतीक्षा करता रहा, पर उसके मुकद्मेकी सुनवाई नहीं हुई। न्यायका यही विधान था। जेलमें इसी बीच कई उल्लेखनीय घटनायें हो गईं। जेलके वार्डरोंमें कुछ ऐसे थे, कैदियोंके साथ जिनकी पूरी सहानुभूति थी। ऐसे ही एक वार्डरने एक दिन रातमें फोरट्रेसके दो कैदियोंको, जिनमें प्रसिद्ध अराजकवादी प्रिंस क्रोपटकिन भी थे—निकालना चाहा पर हेड वार्डरके ऐन वक्त पर जाग जानेके कारण सफल न हो सका। दूसरी बार कुछ कैदी निकल कर भागना ही चाहते थे कि उन्हें एक अफसरने देख लिया। उन्हें अपनी काल-कोठरीकी ओर लौट जाना पड़ा। पीछे उस अफसरको यह जानकर बड़ा पश्चात्ताप हुआ कि वे राजनैतिक कैदी थे और उनमें उसका एक प्यारा मित्र भी था।

पर इन सब घटनाओंमें मुख्य घटना थी जेलमें दंगेका

होना। बोगलीवफ नामके एक छात्रको जलूस निकालनेके जुर्ममें १५ वर्ष तक साइबेरियामें काम करनेका दंड मिला था, पर वहां भेजे जानेके पहले वह कुछ कालके लिये इसी जेलमें रखा गया। इस जेलमें उस समय प्रायः ३०० राजनैतिक बन्दी थे, जो अलग अलग सेलमें रखे गये थे। पर कभी कभी उन्हें बाहर निकाल कर अकेले अथवा मुंह बांध कर जेलके आंगनमें घुमाया भी जाता था। यह आंगन जेलकी प्रत्येक कोठरी से दिखाई देता था। एक दिन इसी आंगनमें बोगलीबफ खड़ा था, जब पुलिसका एक अफसर वहाँ पहुंचा। उसके सर पर टोपी देखकर उसकी त्योरियां चढ़ गई और उसने चिल्लाकर कहा—तुम्हारा यह साहस कि तुम मेरे सामने टोपी पहन कर खड़े हो।—और यह कहते हुए उसने उसके सरसे टोपी उतार कर दूर फेंक दी। कैदी अपनी-अपनी कोठरियोंसे यह दृश्य देख रहे थे। ट्रिपफके ऐसा करते ही वे सबके सब 'बद-माश! खूनी ट्रिपफ! चला जा' का शोर मचाने लगे। सारे जेल में कोहराम मच गया। ट्रिपफने छ मंजिले जेलकी ओर आंखें उठा कर तथा गुस्सेसे लाल होकर, जेलके गवर्नरसे कहा कि 'इसे बेंत लगानेके लिए अलग रखो' और स्वयं वहाँसे चलता बना। आधे घण्टेमें गवर्नरने लौटकर अभिमानभरे शब्दोंमें यह संवाद सुनाया कि बोगलिबफको ३० बेंत लगाये गये हैं।

राजनैतिक बंदियोंने इतना सुनते ही बलवा कर दिया और वे अपनी-अपनी कोठरियोंके दरवाजे, शीशे, खिड़कियाँ इत्यादि

जितनी चीजें प्राप्त थीं, तोड़ने लगे। ट्रिपफने अतिरिक्त पुलिस भेज कर जेल गवर्नरकी सहायता की और कैदियोंपर धड़ाधड़ मार पड़ने लगी और वे खींच-खींच कर सजा पानेवाले कमरोंमें लाये जाने लगे। कौन दोषी है, कौन निर्दोष है, इसका ध्यान न रखा गया। उन कैदियोंको भोजन भी न मिला और जिन्हें चोट आई थी, वे अस्पताल नहीं भेजे गये। मुलाकातका दिन होनेके कारण सड़क पर कैदियोंके मित्रों और सम्बन्धियोंकी भीड़ लग गयी, पर उस दिन किसीको मिलनेकी इजाजत नहीं मिली। पर सड़क पर से ही वे शोर गुल सुनकर समझ गये कि माजरा क्या है। शहर भरमें सनसनी फैल गयी और बहुतसे लोगाने कैदियोंके पास यह सन्देश भेजा कि अब दंगेका अन्त कर दे, ट्रिपफके साथ हम-लोग शीघ्र ही बदला लगे। हुआ भी ऐसा ही। कुछ ही दिनोंके बाद वीरा नामकी एक लड़कीने अर्जी देनेके बहाने ट्रिपफके पास जाकर गोलियां चलयीं, जिससे वह सख्त जख्मी हुआ और तब से निहिलिस्ट-आन्दोलनके उस आतङ्कवादका श्रीगणेश हुआ, जिसके सम्बन्धमें संसार बहुत कुछ सुन चुका है।

१८७७ के १८ सितम्बरको दंगेमें भाग लेने वाले १९३ कैदियों के, 'जिनमें सिनगव भी था', मुकदमेकी पेशी एक खास इजलास में हुई। पहले तो कुल कैदी एक साथ ही इजलासमें लाये गये, पर उनपर आरोपित फ़र्दजुर्मके पढ़े जानेके बाद वे कई दलोंमें बांट दिये गये और प्रत्येक दलके मुकदमेकी सुनवाई अलग-अलग शुरू हुई। कैदियोंने इसका घोर विरोध किया, क्योंकि एक दल दूसरे दलके

मुकदमेकी कार्यवाहीसे अनभिज्ञ रखा जा रहा था, हालाँ
साथ ऐसा करनेका कोई कारण न था और न ऐसा कर
ही था, जब कि सभी एक ही तरहके अपराधी बतलाये जा
अन्य कोई उपाय न देखकर कैदियोंने आपसमें राय-म
करके यह निश्चय किया कि इजलासमें इसका तीव्र प्रतिवाद
जाय और कहा जाय कि चूकि कोर्टने उनके अधिकारपर
घात किया है, वे अपने ऊपर अदालतका कोई . वक
नहीं करते। सिनगबको उन लोगोंने अपना नायक
किया। पर अदालतने उनके प्रतिवादका कोई ख़याल न
फल यह हुआ कि दूसरे दिनसे कदियोंने अदालतमें ज
अस्वीकार कर दिया। कई दिनों तक पुलिसके सपाहियों
कैदियोंको जबदस्ती अपनी गोदीमें उठा-उठाकर इजलासमें लाना
पड़ा। अन्तमें दूसरा कोई उपाय न देखकर अदालतने उनकी
अनुपस्थितिमें ही उनका मुकदमा देखना शुरू किया। कदियोंमेंसे
कुछ लोगोंने आपसकी रायसे अदालतमें उपस्थित होना स्वीकार
किया। उनमें प्रसिद्ध क्रान्तिकारी मुइश्किन भी थे, जिन्होंने जजोंके
सामने एक बड़ा ही जोशीला भाषण दिया और उन्हे खूब खरी-
खोटी सुनाई।

अन्तमें मुकदमेकी सुनवाई, पूरे आठ महीनोंके बाद समाप्त
हुई और सबको सपरिश्रम देश-निर्वासनकी सजा मिली और वे
साइबेरियाकी खानोंमें भेज दिये गये। सिनगब को ९ वर्षके लिये
देश-निर्वासनकी सजा मिली।

साइबेरिया भेजे जानेके इन्तजारमें जब तकके लिये सिनगव इत्यादि पीटर और पालके फोरट्रेस (दुर्ग) में ही रखे गये। इसी बीच कुछ ऐसे कैदियोंने, जिनके मुकदमेका अभी फैसला नहीं हुआ था, उनके ऊपर ज्यादा सख्तियां होनेके कारण उपवास करना शुरू किया। उनके साथ समवेदना प्रकट करनेके लिये सिनगब आदिने भी अनशन आरम्भ किया। तीन दिनों तक उन लोगोंने अन्न-जलका स्पर्श भी नहीं किया। जब यह बात उनके घरवालोंको मालूम हुई, तो दौड़े हुए वे जलके सर्वश्रेष्ठ अफसर मेजेण्टजेफके पास गये और उनसे अनुरोध किया कि वह कैदियोंकी माँगोंकी पूर्ति करके उन्हें मृत्युसे बचा दें। उनके इस अनुनय-विनयके उत्तरमें मेजेण्टजेफने कहा, कि "वे मर जायँ, मैं तो उनके लिए कफ़न खरीदनेकी आज्ञा भी दे चुका हूं।" शोकसन्तप्त पिता, माता, स्त्रियों, बहनों और पुत्रियोंका उस निष्ठुरने कुछ भी ख्याल न किया ?

इसके बाद ही कैदियोंके पास यह संवाद पहुंचा कि मेजेण्ट-जेफकी हत्याका इन्तजाम हो रहा है और उन्होंने उपवास करना छोड़ दिया। फौजके एक नौजवान अफसरने शीघ्र ही जेनरल मेजेन्टजेफकी हत्या कर डाली। सिनगवके वह मित्रोंमें था और उसने उसे बहुत समझाया कि वह ऐसा न करे, पर उसने एक न सुनी और उस नृशंस अफसरका प्राण लेकर ही छोड़ा।

साइबेरियामें ६ वर्षकी सजा भुगत चुकनेके बाद सिनगबकी रिहाई हुई, पर उसे घर लौटनेकी इजाज़त नहीं मिली। उसे केवल

यूरोपीय रूस लौटनेकी आज्ञा मिली। वहां जानेकी अपेक्षा उसने साइबेरियामें ही रहना बेहतर समझा और वहीं सपरिवार बस गया। गवर्नमेण्ट सेविंग-बक के कण्ट्रोलरकी जगह भी उसे मिल गई, पर अभी दुर्भाग्यने उसका संग न छोड़ा था। "डूमा" के लिये निर्वाचन होने वाला था। उसके पहले राज्य-
तोमस्क शहरसे राजनैतिक सन्देहात्मक आदमियोंको
शुरू किया। सिनगब भी उसी जालमें जा फँसा। बीमार था,
की दवा हो रही थी, पर अधिकारियोंने इसका कुछ भी खयाल नहीं किया और उसे जेलमें रख छोडा। चार दिनोंके बाद उसे आज्ञा मिली कि वह बिना विलम्ब साइबेरियाकी सरहदसे बाहर हो जाय।

कई महीनों तक वह साइबेरियाके बाहर सपरिवार इतस्ततः घूमता रहा, पर कहीं ठहरनेका ठौर नहीं मिला। अन्तमें उसने तोमस्कके गवर्नर-जेनरलके पास अर्जी भेजी, जिस पर उसने लिखा कि 'मुझे सिनगबके तोमस्क लौटने और अपने पुराने पद पर आरूढ़ होनेमें कोई बाधा नहीं दीख पड़ती।' तदनुसार वह पुनः तोमस्क लौट आया, पर उसे पुनः सेविंग-बैंकमें कण्ट्रोलरकी जगह नहीं मिली।

इसके बादकी सिनगब और सोनियाकी जीवन-कथा बड़ी ही हृदय-विदारक है। उसका पुत्र अनातोले रूसकी ओरसे जापानमें लड़ने गया और वहीं घायल होकर संग्राम-स्थलीमें पड़े-पड़े ही मर गया। उनकी लड़की नैतशाने, जो केवल १७ वर्ष की,

सुन्दरी एवं शिक्षिता थी, आत्महत्या कर ली, क्योंकि जीवनके आरम्भकालसे ही दुःखोंका अनुभव करते-करते उसकी नसें ढीली पड़ गयी थीं। बड़े पुत्र सर्जियसने भी एक दिन आत्महत्या करके अपनी लीला समाप्त करली।

सोनिया और सिनगबका जीवन-वृत्तांत पढ़ कर किसकी आँखोंमें न आँसू आ जायँगे। आशा और उमंगके साथ जिनके जीवनका प्रभात हुआ था, उनके ही जीवनकी ऐसी नैराश्यपूर्ण सन्ध्या ही नहीं, अपराह्न और मध्याह्नकाल भी हुआ और इसका एकमात्र उत्तरदायित्व था वहांके ज़ारशाही शासनपर, जिसने ऐसे सैकड़ों हजारों व्यक्तियोंका जीवन बर्बाद कर डाला था।

एक विप्लवी विद्वान्

पीटर लैवरफका जन्म रूसके एक जमींदार परिवारमें सन् १८२३ ई० हुआ था। आपके पिता स्वेच्छाचारी प्रकृतिके जमींदार थे और रैयतोंकी बात तो अलग रही, अपने परिवारके लोगोंके साथ भी बड़ी कड़ाईके साथ पेश आते थे। पर साथ ही संस्कृतिके आदमी थे और खूब शिक्षित थे। इसीका फल था कि पीटर लवरफने भी बाल्यावस्थामें ही रशियन, फ्रेंच और जर्मन की बहुत सी पुस्तक पढ़ डाली थीं।

लैवरफ-परिवारका उस प्रान्तमें बड़ा सम्मान था। कहते हैं, दक्षिणीय रूसकी यात्राको जाते हुए जार एलेक्जण्डर प्रथमने लैवरफ भवनमें विश्राम किया था और अपने ही हाथोंसे भावी क्रान्तिकारी पीटर की पीठ ठोकी थी। वह उस समय एक वर्षका शिशु था।

थोड़ी उम्रमें ही आपकी वाल्टेयर, डिडरो आदि महान् पुरुषों के कृत्योंसे घनिष्ठता हो गई थी। १६ वर्षकी उम्रमे आप (युद्धास्त्र) स्कूलमें भर्ती हुए। उसी उमरमें आपने दो कवितायें लिखी थीं, जिनमेंसे एक किसी मासिक-पत्रमें भी प्रकाशित होगई थी। पर साहित्यसे ज्यादा आपकी अभिरुचि

विज्ञान, इतिहास और दर्शनकी ओर थी। "फ्रांसकी राज्य क्रांति का इतिहास" उन दिनों आपका प्यारा ग्रन्थ था और इसे आपने कई बार पढ़ डाला था। कालेजकी शिक्षा समाप्त करके आप युद्धास्त्र स्कूलमें ही शिक्षक नियुक्त हुए और जबतक आपकी गिरफ्तारी नहीं हुई, उसी पद पर रहे।

युद्धास्त्र स्कूलके शिक्षकके पद पर रहते हुए आपने कई बड़े महत्वपूर्ण लेख लिखे थे। इनमेंसे सबसे अधिक महत्वका और सनसनी फैलानेवाला आपका लेख "व्यक्तित्व"(*Individuality*) पर था, जिसे आपने एलेकजण्डर हर्जेन और प्राउधनको समर्पित किया था। यह लेख इसलिये सबसे महत्वका है कि इसमें आपने अपने उस विचारका प्रतिपादन किया है, जिसके अनुसार आप अपने जीवन भर चलते रहे। आपने इस लेखमें लिखा है "मनुष्यको पुराने तथा प्रचलित विचारोंका अन्धानुसरण न करके—लकीरका फकीर न बनकर—अपने 'व्यक्तित्व' का परिचय देना चाहिये, प्रचलित विचारोंकी तीव्र समालोचना करके अपना मत आप ही कायम करना चाहिये और उसके अनुसारही जीवनमें चलना चाहिये। पूर्वजोंके आचार-विचारका अनुसरण करनेवाला मनुष्य नीतिमान या सदाचारी नहीं है और वह, जिसने अपना मत आप ही निश्चित किया है, पर साहस अथवा त्यागकी कमीसे उसका जीवनमें उपयोग नहीं करता, दुराचारी है।"

रूसके प्रसिद्ध निहिलिज्म मतका आधार प्रोफेसर लैवरफका

यही विचार है और अपने इन्हीं विचारोंके कारण उन्हें जीवन भरके लिए अपनी मातृभूमिका त्याग करना पड़ा था।

जार एलेक्जण्डर द्वितीयका अत्याचार ज्यों-ज्यों बढ़ता जाता था, प्रो० लैवरफ त्यों-त्यों क्रांतिवादकी ओर अग्रसर होते जाते थे। अन्तमें १८८३ के पोल-विप्लवके कुछ दिन पहले वह "देश और स्वतन्त्रता" नामक एक क्रान्तिकारी दलमें शामिल हो गये। इसके दो तीन वर्षोंके बाद काराकोसफ नामके एक व्यक्तिने जारकी हत्या करनेका प्रयत्न किया और उसके फल स्वरूप 'भयपूर्ण शासन' का प्रारम्भ हुआ और लोग धड़ाधड़ पकड़कर जेलोंमें ठूसे जाने अथवा साइवेरियाकी खानों या जेलोंमें भेजे जाने लगे। अन्तमें प्रो० लैवरफको भी उन्हींमें शामिल होना पड़ा और उनपर क्रान्तिकारी विचारोंके प्रचारका इल्जाम लगाया गया। नौ महीने हवालातमें सड़ाये जानेके बाद, वह काडनिकौफ नामक स्थानको भेज दिये गये। जहां सिर्फ असभ्य आदमियोंकी आबादी थी। वहां उन्हे भयानक कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा, पर उनसे वह जरा भी विचलित न हुए, वरन् वहां पहुंचते ही उन्होंने लिखने-पढ़नेका काम शुरू कर दिया। रूसके मासिक पत्रोंके लिए लेख लिखने लगे। अपने इन लेखोंमे उन्होंने अपने 'व्यक्तित्व' मतका खूब जोरदार शब्दोंमें प्रतिपादन किया है। इसके सिवा 'सदाचारका लक्ष्य' 'शिक्षित तथा सदाचारी व्यक्तियोंका देश तथा देशकी साधारण जनताके प्रति कर्तव्य' आदि विपयों पर भी बड़े उत्तम और प्रभावशाली लेख लिखे थे। क्रान्तिकारियों

के लिये तो ये लेख धर्म-ग्रन्थके समान हो गये हैं। निहिलिस्ट उनके लेखोंको पढ़ते, मनन करते और उससे उत्साहित होते थे। उनके लिये लेख मार्ग-दर्शकसे हो गये हैं।

हर्मन लोपाटिनकी सहायतासे—जो स्वयं कुछ दिनोंके बाद गिरफ्तार करके शुशेलवर्ग किलेमें बन्द कर दिये गये और जिनका फिर पता न चला—फरवरी १८७० में प्रोफेसर लैवरफ काउनिकफसे मिलकर पेरिस चले गये, और वहीं रहने लगे। अपनी मातृभूमिसे यह उनकी अन्तिम विदाई थी।

पेरिस पहुंचते ही उनकी वहाके विद्वानोंके साथ खासी जान-पहचान हो गई और विद्वत्समाज में—खास कर क्रान्तिकारी विद्वानोंके बीच—उनका खूब सम्मान होने लगा। "इन्टरनेशनल" पत्रसे भी उनका सरोकार हो गया। फ्रांस-जर्मन युद्धके बाद कुछ दिनोंके लिये फ्रांसका शासनसूत्र साम्यवादियोंके हाथ आ गया। प्रोफेसर लैवरफ साम्यवादी सरकारकी ओरसे शिक्षा-संगठनके लिये प्रयत्न करने लगे, पर इतने ही में साम्यवादी शासनका अन्त हो गया। शासनकी बागडोर पुनः अ-साम्यवादियोंके हाथ चली गई।

अपने कुछ रूसी मित्रोंके अनुरोध पर उन्होंने ज्युरिच से "अग्रगामी" नामकएक पत्र निकाला जो कुछ दिनोंके बाद ज्युरिचके बदले लन्दनसे प्रकाशित होने लगा। इस पत्रसे उनका सम्बन्ध १८७६ तक रहा। १८७६ में उन्होंने इस पत्रसे अपना संबंध-विच्छेद कर लिया।

कई राजनैतिक आन्दोलनों में भाग लेनेके कारण १८८२ में उन्हें फ्रांससे निकल जानेकी आज्ञा मिली, पर इस आज्ञाका फ्रांस में उनके कुछ सम्मानीय मित्रों द्वारा इतना घोर विरोध हुआ कि अन्तमें फ्रासीसी सरकारको उन्हें पेरिस लौट आनेकी आज्ञा देनी पड़ी। इससे बाद उन्होंने कई बड़े महत्वपूर्ण लेख लिखे, जिनका सम्बन्ध रूसके क्रान्तिकारी-आन्दोलनके इतिहाससे था। पर उस समय की उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति "विचारका इतिहास" (*History of thought*) नामक ग्रन्थ है। प्रायः १६०० पृष्ठोंकी दो भागोंमें बँटी हुई इस पुस्तकमें उन्होंने 'संसारके विकास' (*Evolution of the world*) की विशद विवेचना की है और उसका विस्तृत इतिहास दिया है। इसमें उन्होंने दिखलाया है कि संसार शुरूसे ही उन्नति करता आया है और आगे और भी उन्नति करेगा। समाज-सुधारकोंके दिलमें ये बातें आशा उपजाने वाली हैं, इसमें सन्देह नहीं। प्रोफेसर लैवरफ अगर जीवित रहते, तो इस पुस्तकके और भी कई भाग प्रकाशित करते, पर ११ फरवरी १६०० को उनकी मृत्यु हो गई और उनकी यह मनोभिलाषा पूरी न हो सकी। उनकी मृत्यु पर संसारव्यापी शोक प्रदर्शित किया गया था और जीवन-कालमें जो उनके विरोधी थे उन्होंने भी उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की थी।

एक चतुर क्रान्तिकारी

जेल-अधिकारियोंकी आँखोंमें बार-बार धूल झोंकनेवाले निहिलिस्ट वीर लियो ड्यूस्कका जन्म रूसके कीफ नामक स्थानमें सन् १८५५ में हुआ था। उन्नीस वर्षकी ही अवस्थामें वह क्रान्तिकारी-दलमें शामिल हुआ और अपने दो सहयोगियों—स्टीफानविक और बोहानोवस्कीके साथ शिग्रिन जिलेके किसानोंके बीच क्रान्तिकारी-मतका प्रचार करने लगा। उक्त जिलेके किसान उन दिनों रूसी सरकारके कोप भाजन हो रहे थे और उनमेंसे कुछ लोग नित्य-प्रति जेलोंमें ठूसे जा रहे थे। उन्हें जो जमीन दी गयी थी, उसे वे आपसमें बाँटना न चाहते थे, सामूहिक ढंगपर ही जोतना चाहते थे; पर सरकार इसके विरुद्ध उन्हे यह आदेश दे रही थी कि वे जमीनको आपसमें बाँट ले, उसे व्यक्तिगत सम्पत्ति बना लें, लेकिन उन्हे यह मंजूर न था। सरकारकी ओरसे उनपर जो सख्तियाँ की जा रही थीं, उसका एकमात्र कारण यही था। लियो तथा उसके साथियोंने किसानोंके बीच विद्रोहाग्नि फैलानेका यह अच्छा मौका देखा और उनके भीतर जो आग सुलग रही थी, उसे उभाड़ने लगे। पर इसके लिये उन्होंने जिस साधनका उपयोग किया, वह ठीक न था। उन्होंने ज़ारकी ओरसे उन किसानोंके नाम झूठा घोषणा-पत्र निकाला, जिसमें

लियोने इस घटनाके बाद अपना नाम बदल डाला और छिप कर रहने लगा, क्योंकि पुलिस उसकी तलाशमें चारों ओर घूमने लगी। उन दिनों लियो ही नहीं, बल्कि लियो उसे सैकड़ों ऐसे व्यक्ति थे, जिन्हें पुलिस खोज रही थी, पर वे गुप्त रूपसे नाम बदल कर अपने काममे संलग्न थे और पुलिसकी आँखोंमें धूल झोंक रहे थे, पर एक दिन उसी दलके एक व्यक्तिने जिसे पुलिसने पकड़ लिया था और जो मृत्युदंड पानेकी आशङ्कासे भयभीत हो रहा था, उनका भण्डाफोड़ कर दिया, जिसके फलस्वरूप वह स्वयं तो रिहाई पा गया, पर कई दूसरे आदमी पकड़ लिये गये। लियोने बदलेमें उसके ऊपर बन्दूकका वार किया, जिससे वह सख्त जख्मी हुआ। इसके कुछ ही दिनोंके बाद शिम्रिनमें विद्रोह फैलानेके इलजाममें लियो ड्यूस्क भी एक दिन अकस्मात गिरफ्तार कर लिया गया। उसके मित्र स्टीफानविक और बोहानोवस्की पहले ही गिरफ्तार हो चुके थे। वे तीनों एक ही जेलखानेमें बन्द किये गये। पर कुछ ही महीनोंके बाद वे तीनों जेलखानेसे निकल भागे। उनके भागनेकी कथा इस प्रकार है—

फोलेनको नामका एक क्रान्तिकारी मजदूरके वेषमें जेलखानेमें दाखिल हुआ और कुलीका काम करने लगा। उसने अपना नाम माइकेल बताया। काम करनेमें वह बड़ा चतुर और परिश्रमी था और बड़ी मुस्तैदीसे अपनी ड्यूटी अदा करता था। उसके कामसे प्रसन्न होकर जेलखानेके गवर्नरने उसकी तरक्की कर दी, उसे वार्डर बना दिया और साधारण कैदियोंके वार्डमें उसकी नियुक्ति हुई।

सन्देह-रहित कर दिया। वे सो गये इधर माइकेल नामधारी फोलेनकोने लियो आदि कैदियोंको जेलसे बाहर किया। खुद भी निकल भागा। नदीमें नाव पहलेसे लगी थी। वे सबके सब उस पर सवार होकर चल दिये और एक सप्ताह तक चलते ही रहे। पुलिस उनकी टोह न पा सकी।

उक्त घटनाके दो वर्ष बाद तक लियो प्रचार-कार्यमें लगा रहा, पर अन्तमें अधिक दिनों तक पुलिसकी तीक्ष्ण आँखों से बचा रहना असम्भव जानकर और यह सोचकर कि अबकी बार पकड़े जानेपर वह जरूर ही शुशेलवर्गके किलेमें ठूसा जायगा, उसने रूस से भाग निकलना ही श्रेयस्कर समझा और सन् १८८० के प्रारम्भमें रूससे निकल भागा।

रूससे बिदा होकर ड्यूस्क प्रायः चार सालतक स्विट्जरलैण्ड और जर्मनीमें निवास करता रहा और कई विषयोंके अध्ययनमें लगा रहा। अन्तमें १८८३ ई० में उसने और कई रूसी साम्यवादियोंके साथ मिल कर जो स्विट्जरलैंडमें शरण ले रहे थे, "मजदूरोंके उद्धारार्थ समिति"की नींव डाल, जिसका उद्देश्य रूसमें कार्ल मार्क्सके विचारोंका प्रचार करना था। इसी उद्देश्य-पूर्तिके लिये उन लोगोंने स्विट्जरलैंडमें एक प्रेस भी खोल डाला और १८८४ के मार्च महीनेमे ड्यूस्क इस सम्बन्धकी कुछ पुस्तिकाएँ वगैरह साथ लेकर फीबर्गके लिये रवाना हुआ। वहांसे उसका अभिप्राय उन कागज-पत्रोंको एक ऐसे स्थानपर भेजना था, जो रूसकी सरहदके समीप हो और जहांसे वे गुप्त रूपसे रूसको भेजे

जा सके। उन दिनों समाज-प्रजातन्त्रवादियों (*Social Democrats*) पर जर्मनीमें भी कड़ी निगाह रखी जाती थी और उनका मुखपत्र *Der Sozial Demokrat* (दर सोशल डेमोक्रेट) जर्मनीमे न छपकर स्विटजरलण्डमें छपता था और वहांसे गुप्त रूपसे जर्मनीको भेजा जाता था।

फ्रीवर्गके जिस होटलमें ड्यूस्क जाकर ठहरा, उसके मालिक को जर्मन सरकारकी ओरसे सख्त हिदायत थी कि वह स्विटजूर-लैण्डसे आने वाले यात्रियों पर कड़ी निगाह रखे और जिसके सम्बन्धमें जरा भी सन्देह हो कि वह जब्त पत्र-पत्रिकाएं अथवा पुस्तकोंको भेजना चाहता है, उसके आनेकी सूचना तत्काल पुलिस को दे दे। ड्यूस्कके पास भी एक बड़ा-सा बक्स था, जो पुस्तकों और पर्चोंसे भरा था। होटलके मालिकने सरकारी आज्ञानुसार उसके आनेकी खबर पुलिसको दे दी और पुलिसने आकर बिना किसी वारण्टके उसकी तलाशी ली। दुर्भाग्यवश उसके बक्ससे और चीजोंके साथ-साथ '*Sozial-Demokrat*' अखबार की, जो जब्त था, कुछ कापिया निकल आईं। वह फौरन गिरफ्तार कर लिया गया। पुलिसके द्वारा नाम–धाम पूछे जाने पर उसने अपने को बुलिगिन नामक मास्कोका एक छात्र बतलाया, पर तहकीकात करने पर मालूम हुआ कि मास्कोमें बुलिगिन नामका कोई छात्र नहीं है। रूसकी पुलिस चौकन्नी हो गयी और अन्तमें उसे यह पता चल गया कि यह बुलगिन नामधारी व्यक्ति दूसरा कोई नहीं, ड्यूस्क ही है। फिर क्या था ? रूसी सरकारने जर्मन सरकारसे

यह अनुरोध किया कि वह उसे उसके हवाले कर दे। चूंकि राज-नैतिक अपराधियोंको रूसी सरकारके जिम्मे करनेके सम्बन्धमें तबतक रूस और जर्मनीके बीच कोई सन्धि नहीं हुई थी, रूसी सरकारने ड्यूस्क पर जुर्म लगाया कि उसने गोनौविक् नामक एक व्यक्ति की हत्या की है; अतएव वह साधारण अपराधी है और इसलिये जर्मन सरकार का यह फर्ज है कि वह लियो ड्यूस्कको उसके हवाले करे। इस सम्बन्धमें रूसी सरकारको झूठ बोलना पड़ा और कई नीच कर्म करने पड़े, पर उसे झूठ बोलते हुए अथवा नीच कर्म करते हुए जरा भी हिचकिचाहट न हुई। इससे यह पता चलता है कि जारशाहीका उस समय तक कितना नैतिक पतन हो चुका था।

ड्यूस्कके गिरफ्तार हो चुकने पर रूसी सरकारने स्टिफान-विकके सम्बन्धमें भी लिखा कि वह भी ड्यूस्कके साथ-साथ वर्षोंसे लापता है, शायद जर्मनीमें छिपा हो, उसकी भी खोज होनी चाहिये और गिरफ्तार होकर उसे भी हमारे पास आ जाना चाहिये, क्योंकि गोनौविक्की हत्यामें वह भी शामिल था, हालांकि वह इस घटनाके—ड्यूस्कके पकड़े जानेके—कई वर्ष पहले ही गिर-फ्तार हो चुका था और उस समय रूसके किसी जेलखानेमें सजा भुगत रहा था। दूसरी नीचता जो उसने की, वह यह थी कि उसने बौगडेनोविक नामक व्यक्तिको डिप्टी पब्लिक प्रोसीक्युटरकी झूठी उपाधि देकर ड्यूस्ककी पहचानके लिये भेजा। उसने ड्यूस्क के साथ, जर्मन मजिस्ट्रेटके समाने, इस तरहसे बातें करनी शुरू

की, मानों उन दोनोंकी पुरानी जान-पहचान हो, हालांकि इसके पहले उसने ड्यूस्कको कभी देखा भी न था, जान-पहचान की बात तो अलग है।

मजिस्ट्रेटने उसकी बातों पर विश्वास करके वेडन-सरकारके पास सिफारिश की कि ड्यूस्क रूसी सरकारके हवाले किया जाय। सरकारने वैसा ही किया, पर ऐसा करनेके पहले यह शर्त करा ली कि लियो ड्यूस्कके मुकदमे पर न तो किसी खास राजनीतिक अदालतके सामने विचार किया जायगा और न उसके ऊपर गोनोविककी हत्याके जुर्मके सिवा और कोई दूसरा आरोप ही लगाया जायगा।

भाँति रूसी सरकारके हवाले कर दिया करें। एकबार रूसपर सार्वजनिक भाषण देते हुए उन्होंने यहाँतक कह डाला था कि "स्टिफानोविक, वोहानोवस्की और ड्यूस्क नामके तीन क्रान्तिकारी कीफके किलेसे भागकर किसी दूसरे देशमें निवास कर रहे हैं, पर दुर्भाग्यवश अभी तक पकड़े नहीं गये हैं।" ड्यूस्क उस सभामें उपस्थित था। दूसरे दिन इस विषय पर उक्त प्रो० थुनके साथ वादविवाद करते हुए उसे यह पक्की तरह मालूम हो गया कि अगर प्रो० थुन उसकी असलियतको जान जायं, तो उसे जरूर ही गिरफ्तार करा दे। अतः उसने प्रो० थुनके साथ मिलना-जुलना बंद कर दिया और शीघ्र ही बेसेल से भी चलता बना।

शीवर्गके मजिट्रेटके सामने जब ड्यूस्क लाया गया, तो उसने प्रो० थुनको वहाँ पहलेसे मौजूद पाया। चूंकि कोई दूसरा ऐसा योग्य व्यक्ति न मिल सका था, जो ड्यूस्कके पासके रूसी भाषाके कागजोंका अनुवाद करके मजिस्ट्रेटको समझा सके। प्रो० थुन इस कामके लिये वहाँ बुलाये गये थे। प्रो० थुनने ड्यूस्कको देखते ही उसे रूसी भाषामें, जिसे स्वयं मजिस्ट्रेट भी समझ सकता था, कहा कि मैं तुम्हारे असली नामसे वाकिफ हूं और तुम्हारी हर तरहसे मदद करने तैयार हूं। प्रो० थुन की इन सब बातोंको सुनकर आश्चर्य और भयके मारे ड्यूस्कके तो होशहवास गुम होने लगे, पर दरअसल बात यह थी कि प्रो० थुनको स्विटजरलैण्ड में ही ड्यूस्कके सम्बन्धमें सारी बातें मालूम हो चुकी थीं और वह अब उसकी सहायताको हर तरहसे तैयार थे। उन्होंने अपनी

शक्ति भर यह कोशिशकी कि ड्यूस्ककी उसके मित्रोंके साथ मुलाकात हों और मामलेके सम्बन्धकी जितनी बातें गुप्त रूपसे होती थीं, उनकी सूचना वह फौरन उसे तथा उसके मित्रोंको दे देते थे। उन्होंने यहां तक वचन दे रखा था कि अगर ड्यूस्क हवालातसे किसी तरह भाग निकले, तो वह उसे स्वयं अपने घरमें छिपा रखेंगे, पर रूसी सरकारके यह सूचित करनेके कारण कि ड्यूस्क दो बार जेलसे भाग चुका है, उस पर अत्यन्त कड़ा पहरा रखा गया था, अतएव अबकी बार उसे भागनेके प्रयत्नमें सफलता न मिल सकी। प्रो० थुनके इस विचार-परिवर्तनका कारण यह था कि रूसके क्रान्तिकारी-आन्दोलनका गहन अध्ययन कर चुकनेके बाद उनकी यह धारणा हो गई थी कि रूस-निवासियोंके लिये बेकानूनी साधनों और आतङ्कवादके सिवा, उद्धारका कोई दूसरा उपाय न था और ज़ारशाहीके क्रूर तथा अनुचित व्यवहारों का वही एकमात्र जवाब था।

रूसकी तत्कालीन सरकारके लिये झूठ बोलना—झूठे वादे करना-साधारण बात थी। ड्यूस्कके मामलेमें भी उसने ऐसा ही किया। यद्यपि वह वादा कर चुकी थी कि ड्यूस्कको सिवा गोरोनोविककी हत्याके दूसरे किसी राजनैतिक अपराधमें सजा न दी जायगी और उसके साथ राजनैतिक अपराधियोंका-सा सलूक न होगा, पर ड्यूस्कके साथ आगे चल कर उसका जैसा व्यवहार हुआ, उससे यह साफ-साफ जाहिर है कि उसने अपनी प्रतिज्ञाका पालन नहीं किया। ड्यूस्कके साथ शुरूसे अन्त तक राजनैतिक

अपराधीका-सा ही व्यवहार हुआ और उसके आचरणसे यह साफ जाहिर होता है कि उसकी यह प्रबल इच्छा थी कि उसे राजनैतिक अपराधमें ही दण्ड मिले, क्योंकि वैसी अवस्थामें उसे घोरसे घोर दण्ड दिया जा सकता था, फांसी तक दी जा सकती थी, पर जर्मन गवर्नरके भयसे वह ऐसा न कर सकी। जर्मनीकी सरहद पार करते ही ड्यूस्क एक राजनैतिक अफसर की देख-रेखमें रखा गया। सेंट पिटसवर्ग लाकर वह पिटर और पालके दुर्ग में रखा गया, जिसमें केवल राजनैतिक अपराधी ही रखे जाते थे। वह शीघ्र ही ओडेसा नामक शहरमें लाया गया, जहां गोर्नोविककी हत्या हुई थी। वहां उसे एक ऐसी गन्दी और अन्धकारपूर्ण कोठरीमें रखा गया, जिसमें दिन रात बड़े-बड़े चूहे इधर-उधर घूमने और उस पर आक्रमण करनेको तैयार रहते थे। इस निकृष्ट जीवन से घबड़ा कर उसने यह निश्चय किया कि आत्महत्या कर ले और अन्न-जलका परित्याग कर दिया। तीन दिनों तक वह अनशन करता रहा। सरकारने यह सोचकर कि अगर इसकी इस तरह मृत्यु हो गयी, तो जर्मनी उसे दोषी ठहराने की चेष्टा करेगा, उसकी दशामें परिवर्तन कर दिया। अन्तमें उसके मुकदमेकी सुनवाई कोर्ट-मार्शलके सामने हुई, जहां केवल न्यायका स्वांग रचा गया, क्योंकि कोर्ट मार्शलके प्रेसीडेंटने उसे बयान तक नहीं देने दिया और उसे १३ वर्ष ४ माहकी सज़ा दे दी। "दंडनीय अधिवासन" से मतलब यह था कि इस सज़ाका पाने-वाला साइबेरियाके किसी ऐसे स्थानको भेज दिया जाता था,

जहाँ कुलियोंकी जरूरत रहती थी और वहाँ उसे दिन रात खान इत्यादिमें खटना पड़ता था और कभी-कभी जमींदारोंके कोड़े भी खाने पड़ते थे। ऐसे स्थानोंमें 'काराका दंड अधिवासन (*Kara penal settlement*) मुख्य था। लियो ड्यूस्कको वहीं भेजना निश्चित हुआ।

रूससे साइवेरियाकी यात्रा बड़ी कठिन थी और रास्तेके दारुण कष्टोंका कोई अन्त न था, विशेषकर दंडित व्यक्तियोंके लिये तो यह यात्रा न थी, मौत थी। कहीं भीषण सरदी, कहीं असह्य गर्मी, कहीं बीहड़ वन, कहीं रेगिस्तान, दिन-रात पुलिस सिपाहियोंकी कड़ाई, गालियाँ और हंटरकी मार ! इतनेसे ही इस यात्राकी भीषणताका अनुमान किया जा सकता है।

रास्तेमें जहां-तहा मृत व्यक्तियों की लाशें पड़ी मिलती थीं। ये लाशें उन कैदियों की होती थीं, जो यात्राके कष्ट न सह सकनेके कारण प्राण-परित्याग कर देते थे।

इन "दंडनीय अधिवास" स्थानों का यह हाल था कि यहाँ कैदियों को न तो भरपूर भोजन मिलता और न सोने-रहनेके लिये समुचित स्थान ही। मां-बाप, स्त्री, बाल-बच्चों से कोसों दूर रहते हुए इन अभागे कैदियों का जीवन पशुओं से भी बदतर था। एक तो बनवासके दिन और फिर कोड़ोंकी कड़ी चोट, उनकी इस दयनीय दशापर विचार करके किसकी आँखों में न आँसू आ जायंगे !

इन अधिवास-स्थानों मेंसे एक स्थानका नाम नरशिरक था

जहां हजारों मीलमें केवल चांदीकी खानें थीं, जो ज़ारकी व्यक्तिगत सम्पत्ति समझी जाती थी। बहुत दिनोंतक रूससे बिना किसी दोषके किसान वहां ले जाकर जबर्दस्ती बसाये जाते थे ताकि वे इन खानोंमें काम कर सकें। सन् १७२२ से वहां कैदियोंका भेजा जाना शुरू हुआ। सन १८६३ के पोल-बलवाके बाद के तीन वर्षोंमें १८,६२३ पोल देशनिर्वासनका दण्ड देकर साइबेरिया भेजे गये थे, जिनमें प्रायः ७,००० तो सिर्फ इन्हीं खानोंमें रखे गये थे। उनमें ४,२५२ उच्चकुलके धनी-मानी कैदी थे।

अन्ततः १८८५ की २४ वीं दिसम्बरको ड्यूस्क 'काराके दण्डनीय अधिवास' (*Kara penal settlement*) में पहुंचा। फी वर्गकी गिरफ्तारीके बादसे २२ महीने गुजर चुके थे और इतने दिनोंमें उसने ८,००० मीलकी पैदल यात्रा की थी और एक सौसे अधिक जेलखानोंमें डेरा डाल चुका था और हर तरहकी,—एकसे एक बढ़कर सख्तियां झेल चुका था। अगर उसे यह सन्तोष न होता कि वह यह सब कुछ अपनी मातृभूमि तथा एक उच्च कार्यके लिये सह रहा है, तो वह कदापि इन यातनाओंको न सह सकता और उसके प्राण पखेरू कबके न उड़ गये होते।

काराके दण्डनीय-अधिवासनमें उसकी ऐसे बहुतसे राजनैतिक अपराधियोंसे मुलाकात हुई, जिनकी दृढ़ता और आत्मत्यागकी कथाएं स्वर्णाक्षरोंमें लिखने योग्य हैं।

इनमेंसे एक घटनाका हाल यहां दिया जा जाता है, जो इस प्रकार है—

कारा प्रान्तके गवर्नर-जनरल (बड़े लाट) बैरन कौर्फ, एक दिन कारा जेलके निरीक्षणमें आये । जेलके किसी बरामदेमे एलिजावेथ कोवल्सकाया नामकी एक राजनेतिक अपराधिनी एक बेंच पर बैठी हुई थी। वह उन्हे देखकर खड़ी नहीं हुई, क्योंकि रूसके तात्कालीन क्रान्तिकारी जार अथवा उनके पदाधिकारियोंके आधिपत्यको स्वीकार नहीं करते थे। बैरन कौर्फके लिए किसी प्रकारका सम्मान-प्रदर्शन नहीं करते थे, बैरन कौर्फके लिए बुद्धिमानीका काम यह होता कि एलिजवेथकी ओर देखते ही नहीं, दूसरी ओर चले जाते। पर ऐसा न करके उन्होंने उसके प्रति कड़े शब्दोंका व्यवहार किया और कहा कि मुझे आते देखकर तुम्हे खड़ा होना चाहिये था, क्योंकि मै इस प्रांतका सबसे बड़ा अफसर हूं। उनके इस कथनके जवाबमें एलिजवेथने केवल इतना ही कहा कि मैने आपके उस पदके निर्वाचनमें भाग नहीं लिया था।

एलिजवेथके इस उत्तरको सुनकर बैरन कौर्फकी आँखे गुस्सेसे लाल हो गईं और उन्होंने उसे कारा जेलसे हटाकर दूसरे जेलमें भेजनेका निश्चय किया।

आधी रातके समय जब वह सोई हुई थी, जेलके कमाण्डेण्ट ने एलिजवेथ के कमरेमें प्रवेश कर जेलके कुछ नौकरों की मदद से उसे खींचकर कमरेसे बाहर किया। भयसे आकुल होकर वह चिल्ला उठी और उसका चिल्लाना सुनकर जेल भरकी स्त्री-कैदियोंकी नींद टूट गई और दूसरे

दिन उन्होंने इस घटनाके विरोधमें अनशन करनेका निश्चय किया।

कमाण्डेण्ट उनके निर्णयको सुनकर घबड़ा गया ; क्षमा-याचना की। उत्तरमें उन्होंने कहा कि जबतक वह कारा जेलसे अपनी तबदीली न करा लेगा, तबतक वे अपने निर्णयपर दृढ़ रहेंगी। पर अन्तमें कमाण्डेण्टके यह वादा करनेपर कि वह अमुक समय तक अपना तबादला करा लेगा, उन लोगोंने अनशन करनेका विचार त्याग दिया। पर निश्चित समयके गुजर जाने पर भी उसे वहीं देखकर उनलोगोंने पुनः अनशन करना शुरू कर दिया। स्त्रियोंकी जेल पुरुषोंकी जेलसे १२ मीलकी दूरी पर थी, पर उनके अनशनका संवाद पुरुष कैदियोंको भी मिल गया और उन्होंने भी अनशन करनेका निश्चय किया। तीसरे दिन कमाण्डेण्ट और भी भयभीत हुआ और स्त्रियोंसे जाकर कहा कि मेरे आवेदन-पत्रका जवाब आया है, मैं शीघ्र ही किसी अन्य जेलमें भेज दिया जाऊंगा। उसके इस अश्वासन देनेपर स्त्री तथा पुरुष कैदियोंने अनशन भंग कर दिया। पुनः बहुत काल व्यतीत हो जानेपर भी वह वहीं बना रहा, उसका तबादला नहीं हुआ। अतएव स्त्रियोंने फिर तीसरी बार अनशन करनेका निश्चय किया।

उनमेसे एक मैडम सिगिडाने अपना बलिदान देकर दूसरों-के प्राण बचानेका सोचा। उसने कमाण्डेण्टके साथ मुलाकात करनेकी इच्छा प्रकट की और भेंट होनेपर जेलके अन्यान्य

पदाधिकारियोंके सामने ही, उसके मुँह पर तमाचा लगाया और कहा कि 'यह तुम्हें कमाण्डेण्टकी हैसियतसे मिल रहा है।' कैदियोंसे इस प्रकार अपमानित होनेवाला अफसर साधारणतः उस जेलसे हटा दिया जाता था और उसे अपमानित करनेवाले कैदीको प्राण-दण्ड मिलता था। मैडम सिगिडाने सोचा था, इस बार भी वैसा ही होगा, पर तत्काल इन दोनोंमेंसे एक भी न हुआ। इस घटनाके बाद ही उन स्त्रियोंने फिर अनशन करना शुरू कर दिया।

सोलह दिन हो गये, पर उन्होंने एक कण भी मुंहमें न डाला और धीरे-धीरे मृत्युकी ओर अग्रसर होने लगीं अन्तमें जेलके उच्चाधिकारियोंके यह वचन देनेपर कि कमाण्डेण्ट तो अपने पदपर बना रहेगा, पर वे स्त्रियां ही दूसरी जेलको भेज दी जावेंगी, उन्होंने अन्न ग्रहण किया।

पर संधिके बाद तुरन्त ही उन राजनैतिक देशनिर्वासितों पर दूसरा आघात हुआ। बड़े लाटने यह हुक्म जारी किया कि भविष्यमें जेल-अधिकारियोंकी आज्ञाओंका एकसे अधिक बार उल्लंघन करनेवाले राजनैतिक कैदियोंको बेतकी सज़ा दी जाय। इस आज्ञासे कैदियोंमें खलबली मच गई; क्योंकि बेतकी सजाको वे सबसे अधिक अपमान-जनक समझते थे और यह अब तक कभी कानूनी तरीके पर व्यवहारमें नहीं लायी गयी थी। उन्होंने इसका घोर विरोध करना चाहा, पर विरोध करें कैसे? विरोध करनेका मानी था इस सजाका आह्वान करना। कुछ

लोगोंकी रायमें इस दण्डसे छुटकारा पानेका एकमात्र उपाय था सबका एक साथ ही आत्महत्या कर लेना। पर अभी वे इस सम्बन्धमें कुछ निश्चित न कर सके थे, कि समाचार मिला कि जेलके कमाण्डेण्टको तमाचा मारनेवाली मैडम सिग्डिाको बेंत लगाये गये हैं और वह इस सजाके सहनेमें असमर्थ होकर मर गई हैं। इस दुःखद समाचारको सुनकर तथा जीवनसे विरक्त होकर तीन और वीराङ्गनाओंने भी विष खाकर, एक साथ ही प्राण दे दिये। जब यह समाचार पुरुषोंको मालूम हुआ, तो उन्होंने भी उक्त स्त्रियोंका अनुसरण करनेका निश्चय किया और उनचालीसमें से सत्रह कैदियोंने उसी रात विष-पान कर लिया। इसके बादका दृश्य बड़ा ही हृदय विदारक था। विष खा तो लिया, पर उन लोगोंने विषमें काफी शक्ति न होनेके कारण मरे नहीं। पर मृत्युसे ज्यादा कष्टदायक थी वह यन्त्रणा जो उन्हे इस विषके कारण सहनी पड़ी। पर इससे वे जरा भी विचलित न हुए और दूसरे दिन पुनः विषका पान किया। इस बार भी उन्हें कष्ट तो बहुत हुआ पर मरे सिर्फ दो ही।

अन्तमे गवर्नर-जनरलको वह आज्ञा रद्द कर देनी पड़ी।

१८६० के अन्तमें ड्यूस्क जेलसे रिहा कर दिया गया और वह कारा अधिवासनमें रखा गया। यहाँ कैदियोंको आंशिक स्वन्त्रता मिलती थी। वे आठ मीलकी दूरी तक आ-जा सकते थे। और स्वेच्छानुसार कोई भी काम कर सकते थे। पर उन्हे प्रति-दिन प्रातःकाल अपनी हाजिरी देनी पड़ती थी। १८६७ में गवर्नरकी

आज्ञा लेकर वह शिल्का नदीके तटपर स्ट्रेटिएन्स्क नामक एक छोटेसे शहरमें जा बसा और ट्रांस-साइबेरियन रेलवेमें नौकरी कर ली। पर दो ही वर्षोंमें वह वहाके वाशिन्दोंके पापपूर्ण जीवनसे घबड़ाकर ब्लैगोभिस्टशेन्स्क (*Blagovistshensk*) नामक एक दूसरे नगरको चला गया और वहीं रहने लगा।

१६०० के जुलाई महीनेमें उस शहरके निरीह शांतिपूर्ण चीनियोंकी जो निष्ठुर हत्या की गई थी उसका वह चश्मदीद गवाह था।

अमुर नदीके तटपर वह शहर बसा था और उसकी आबादी ३८,००० थी। नदीकी दूसरी ओर साघालिएन नामक एक बस्ती चीनियोंकी थी। रूसके इस शहरको खाना पहुंचाने वाला वही गांव था। नावसे नदी पार करके वे ग्राम्य निवासी शाक भाजी इत्यादि भोजनके सभी पदार्थ लाकर, कम ही दाम पर इस शहरमें बेचा करते थे।

१६०० के वसंतकाल तक उन चीनियोंके साथ इस शहरके रहने वाले रूसियोंका संबंध मित्रवत था पर चीनके "बौक्सर" बलवेके बाद जब रूसी सरकारने अमुर पार करके अपनी कुछ फौज चीनके राज्यमें भेजना निश्चित किया तो चीनियोंके हृदय से सद्भाव जाता रहा और वे नगरवासियोंको आशंकाकी दृष्टि ए देखने लगे। फलतः जब रूसकी फौज अमुर पार करके आगे की ओर अग्रसर हो रही थी, गांवकी ओरसे कुछ चीनियोंने दो चार बन्दूकें दाग दीं जिससे उस नावको लौट जाना पड़ा और

सारे शहरमें सनसनी फैल गई। कुछ लोगोंने अमुर प्रांतके फौजी गवर्नरसे जाकर पूछा कि इस शहरमें तथा इसके अड़ोस-पड़ोसमें रहने वाले चीनियोंके साथ वह किस तरहका व्यवहार करना चाहते हैं। गवर्नर-जेनरलने उत्तर दिया कि चूंकि अभी रूस और चीनके बीच लड़ाईकी घोषणा नहीं हुई है, इसलिये फिलहाल कुछ करनेकी जरूरत नहीं है। शहरमें रहनेवाले चीनियोंने भी गवर्नरसे जाकर पूछा कि, हमें रूस छोड़कर चीनके राज्यमें चला जाना उचित है या नहीं। उसने उत्तर दिया कि नहीं, आप बिना भय और चिन्ताके यहां पूर्ववत् निवास करें, रूसके अन्दर रहने वाले शांतिपूर्ण विदेशियोंपर रूसकी सरकार कदापि कोई आंच नहीं आने दे सकती है न उन्हें कोई क्लेश पहुंचा सकती है। उस ने उसी दिन एक विज्ञप्ति भी निकाली जिसमे शातिपूर्ण चीनियों-पर अत्याचार करने वालोंके लिये दण्डका भय दिखलाया गया था। उसी दिन नदीके उस पारसे कुछ बन्दूकें दगीं जिससे शहर में आतङ्क छा गया। पर उससे कोई क्षति नहीं पहुंची। तथापि शहरके कुछ लोग वहा रहनेवाले चीनियोंको अविश्वासकी दृष्टिसे देखने लगे। शहरमें उस समय कई हजार चीनो निवास करते थे और व्यापार-वाणिज्य तथा नौकरीमें लगे हुए थे। परिश्रमी और ईमानदार होनेके कारण लोगोंका उनपर पूरा विश्वास था। नौकरी करनेवाले चीनियोंने तो किसी किसी परिवारमें बड़ी घनिष्टता प्राप्त कर ली थी और बहुतसे लोगोंने अपना सारा कारबार उनके ही ऊपर छोड़ रखा था। जेनरल ग्रिवस्कीके

आश्वासनपर विश्वास करके ये कई हजार चीनी वहीं ठहरे हुए थे।

पूर्वोक्त घटनाके दूसरे दिन घुडसवार सिपाही नगरनिवासियों के दरवाजोंपर जाकर चीनियोंकी तलाश करने लगे। अगर कोई चीनी मिल गया तो उसे अपने साथ ले चलनेको कहते थे। लोगों के यह पूछनेपर कि वे इन चीनियोंको अपने साथ क्यों और कहाँ ले जा रहे हैं, वे उत्तर दिये थे कि शहर भरके चीनी एक ही स्थानपर पुलिसकी देख-रेखमे रखे जाने वाले हैं। पर लोगोंको उनकी इस बातपर विश्वास न हुआ, वे समझ गये कि इनके साथ कोई अमानुषिक बर्ताव जरूर होगा। अतएव कुछ दयालु लोगोंने उन्हे घरके अन्दर छिपा रखना चाहा, पर सफल न हो सके। पड़ोसियोंने जाकर पुलिसको खबर दे दी और कज्जाक सैनिकोने आकर उन्हे भी गिरफ्तार कर लिया। कई दिनों तक यही होता रहा।

दुर्दैवग्रस्त चीनियोंकी यह आशका निर्मूल न थी। उनका सर तो न उतारा गया पर उससे भी अधिक पाशविक क्रूर उपायोंसे उनके प्राण-हरण किये गये। अमुर नदीके तटपर लाकर वे एकत्र किये गये और उन्हे आज्ञा दी गई कि नदी पार करके चीनके राज्यमें चले जाँय। नदीकी चौड़ाई और गहराई दोनों ही वहा बहुत ज्यादा है और उनके लिये यह कभी संभव न था कि बिना नौकाके वे जीते-जागते नदी पार कर सकें। फिर वृद्ध, बालक, रोगी तथा स्त्रियोंके लिये यह कब संभव था कि वे तैर

कर थोड़ी दूर भी जा सकें ? सिपाहियोंकी इस आज्ञाको सुनकर उनकी घबराहटका ठिकाना न रहा। उनके अनुनय-विनयके उत्तरमें उन्होंने उन्हें बन्दूकके कुन्दोंसे ठेल-ठेलकर पानीमें डालना शुरू किया। जिन्होंने जरा भी हिचकिचाहट दिखलाई वे वहीं कत्ल कर दिये गये। कुछ लोगोंने गवर्नरके दिये हुए आश्वासनकी याद दिलानी चाही, उन्हें भी वहीं सर दे देना पड़ा।

अन्तमें निराश निरुपाय होकर वे पानीके अन्दर घुसे और कुछ ही देरमें नदीके विपुल प्रवाहमें बहने लगे। इस प्रकार सूर्योदय होते-होते कई हजार निर्दोष प्राणियोंके शव अमुर नदीके जलपर तैरते नजर आये और कई दिनोंतक तैरते रहे! जिन लोगोंने इस घटनाको अपनी आंखों देखा था उन्होंने बहुतसे ऐसे दृश्योंका वर्णन किया है जिसे पढ़कर हृदय विदीर्ण होने लगता है।

एक परिवारमें चार व्यक्ति थे—माता, पिता और दो बच्चे। माता-पिताने एक एक बच्चेको गोदमें ले लिया और तैरकर उस पार जानेकी चेष्टा करने लगे। कुछ ही दूर गये होंगे कि दोनों नदीके गर्भमें चले गये और थोड़ी देर बाद जलपर तैरते नजर आये। उनके प्राण पखेरू उड़ चुके थे। एक दूसरे परिवारमें एक ही बच्चा था। मांने बहुत प्रार्थना की कि कम-से-कम उस बच्चे का प्राण न लिया जाय पर उसका कुछ फल न हुआ। अन्तमें निरुपाय होकर वह बच्चेको किनारेपर ही छोड़कर जलके अन्दर घुसी पर शीघ्र ही लौट आई और बच्चेको लेकर जलमें प्रवेश

किया। पर दो चार कदम आगे बढ़कर पुनः जलके बाहर लौटी और बच्चेको जमीनपर रखना ही चाहती थी, कि एक निष्ठुर सिपाहीने आगे बढ़कर उसका तथा उसके बच्चेका काम तमाम करके इस अभिनयका अन्त कर दिया।

नगरके कुछ कोमल-हृदय व्यक्तियोंने दो-चार चीनी नौकर नौकरानियों तथा अतिथियोंको छिपा रखा था। उन्होंने अधिकारियोंके पास आवेदन-पत्र देकर यह प्रार्थना की कि वे उनकी व्यक्तिगत जमानतपर पूर्वोक्त आज्ञासे बरी कर दिये जायँ। पर गवर्नरके दो एक मित्रोंको छोड़कर किसीको ऐसी इजाजत न मिली। मैडम माकेयेमा नामक एक रमणीने चर्चके विशप तथा गवर्नरसे जाकर याचना की कि उनका एक चीनी नौकर, जिसने पाच वर्षतक बड़ी ईमानदारी और सच्चाईके साथ उनकी सेवा की थी, जमानतपर छोड़ दिया जाय। पर उनके लाख अनुनय विनय करनेपर भी उनका हृदय न पसीजा।

पूर्वोक्त हत्याके बाद "अमुर गजट" में (जो सरकारकी ओर से प्रकाशित होता था) इस घटनाका जिक्र इस प्रकार दिया गया था,—"रूसके राज्यमें रहने वाले चीनियोंको चीन राज्यमें भेज दिया गया और इसके लिये उन्हें यह राय दी गयी थी कि वे अमुर पार करके उस पार चले जायँ"। उस प्रान्तके गवर्नर जेनरलने सेंट पिटर्सवर्गके अधिकारियोंके पास समाचार भेजा था, कि "चीनियोंने अपने मृत तथा घायल व्यक्तियोंको अमुरमें फेंक दिया था। इस तरहके प्रायः चालीस मुर्दे नदीमें बहाते हुए

पाये गये हैं।" कर्नल कैनोमिक नामक एक अफसरने अधिकारियोंको सूचित किया था कि एक जगहमें मैंने चीनियोंकी एक बड़ी फौजको परास्त किया है। इसके लिये उसे पुरस्कार भी मिला था, हालां कि उस स्थानपर उसे केवल दो जापानी औरतोंके साथ मुलाकात हुई थी।

पूर्वोक्त हत्याकी आज्ञा निस्सन्देह जनरल ग्रिवस्कीने ही दी थी, पर वह साफ इन्कार कर गया और उसने इसकी जांच पड़-ताल करनेके लिये एक कमीशन भी मुकर्रर कर दिया जिसकी रिपोर्ट कभी प्रकाशित नहीं हुई। कुछ दिनोंके बाद उसने कहा था कि जांचसे यह पता चला कि अफसरोंके बीच एकताका न होना ही इस हत्याका कारण था। जार निकोलस द्वितीयके राज्याभिषेकके दिन मास्कोमें जो हजारों मनुष्योंके प्राण चले गये थे, उसके सम्बन्धमें भी सरकारकी ओरसे यही घोषणा की गयी कि इसका एकमात्र कारण प्रबन्धमें एकताका अभाव था। जेनरल ग्रिवस्कीको आगे चलकर चीनियोंके ऊपर विजय प्राप्त करनेके उपलक्षमें खिताब भी मिला था। उस प्रान्तके करीब अड़सठ ग्रामोंमें बसने वाले चीनियोंको कत्ल कर दिया गया। तत्पश्चात अमुर नदीकी दूसरी ओरके गांवोंमें कज्जाकोंने जाकर आग लगाई और उन्हे भस्मीभूत कर डाला। ड्यूस्कने, जिसने इन घटनाओंको अपनी आंखों देखा था, लिखा है कि दो दिनोंतक ये गांव दिन रात जलते रहे और अमुर नदीका जल इनकी परछाईंसे लाल बना रहा। वृद्ध, वनिता, बालक सभी क्रूरता-

पूर्वक कत्ल कर दिये गये। तरुणी स्त्रियों तथा वालिकाओंके साथ बलात्कार किया गया, और उनके साथ भी वही सलूक हुआ जो औरोंके साथ हुआ था।

ड्यूस्कका हृदय भी इन घटनाओंसे बहुत दुःखी हो रहा था और वह भी इस शहरको सदाके लिये त्याग देना चाहता था, पर देश-निर्वासित होनेके कारण वह अपने निर्वासन-स्थानको नहीं छोड़ सकता था। अतएव उसने पुनः भागनेको सोचा और इसके लिये मौका ढूंढ़ने लगा। अन्तमें एक दिन सुअवसर पाकर वह वहांसे भाग निकला और किसी तरह जापान जा पहुंचा।

जापानसे अमरीका होता हुआ १०६१ मे वह योरप पहुंचा। १६०५ में ज़ारने एक घोषणा की, जिसमे रूसमें वैध-शासनके निर्माणका वादा किया गया था तथा राजनैतिक कारणोंसे देश छोड़े हुए व्यक्तियोंको रूस लौटनेकी इजाजत दी गयी थी और उनकी रक्षाका आश्वासन दिया गया था। जारकी इस मायावी चालको न समझकर कितने आदमी रूस लौट आये और यहां आकर गिरफ्तार हो गये। ड्यूस्क भी उन्हीं में था। १६०६ के जनवरीमें वह पुनः गिरफ्तार कर लिया गया तथा चिरपरिचित पिटर और पाल दुर्गमें रखा गया। उसके मित्र अबकी बार हताश हो गये और उसके पुनः आजाद होनेकी आशा छोड दी। पर वीर हृदय ड्यूस्क इस बार भी विचलित न हुआ और पुनः जेलसे निकल भागनेकी तरकीबे सोचने लगा।

इस वार भी उसे देश-निर्वासनका दण्ड मिला और वह अन्य

कैदियोंके साथ साइबेरियाके लिये रवाना हुआ। अबकी वह उत्तर साइबेरियाके तुरुखांश्क नामक सुदूर दण्डनीय अधिवासनको भेजा गया। रास्तेमें उसने कुछ कपड़े खरीदनेकी इच्छा प्रकट की। जिस अफसरके चार्ज़में वह था, उसने यह सोचकर कि यदि यह स्वयं कपड़े खरीद लेगा, तो इसके कपड़ोंके लिये सरकारसे मिले हुए रुपये बच रहेंगे, उसे आज्ञा दे दी और दो सिपाहियोंकी निगरानीमें वह कपड़े खरीदनेको बाजारमें निकला। कपड़ोंकी एक दूकानपर वे दोनों सिपाही कपड़े देखने तथा कीमत तय करनेमें इतने मशगूल हो गये कि ड्यूस्क अवसर पाकर, बगलके एक मकानमे घुस पड़ा और उसके पिछले द्वारसे निकलकर चलता बना। सिपाही उसे ढूढ़ते फिरे, पर उसकी टोह न पा सके। वह भेष बदलकर सेंटपिटर्सवर्ग चला आया और वहांसे ट्रेन द्वारा फिनलैण्ड आकर उसने सीधे इङ्गलैण्डकी राह पकड़ी। यहाँ वह "रशियन शोशल-डिमोक्रेटिक कांग्रेस" का प्रमुख सदस्य हो गया।

एक साम्यवादी ज़मीन्दार !

रूसी सरकार तथा धर्मगुरुओं-पादड़ियोंकी आँखोंमें काँटोंकी तरह चुभनेवाले, त्यागमूर्ति, साम्यवादी जमीन्दार, दयालु-हृदय प्रिन्स डमित्री एलेकज़ण्ड्रोविच खिलकौफका जन्म एक धनाढ्य परिवार में हुआ था और फौजी परीक्षाओंमें सफल होकर सन् १८७५ में वह फौजमें भर्ती हुए थे। १८७७ में रूस तथा टर्कीके बीच युद्ध आरम्भ हुआ, पर वहजिस रेजीमेण्टके अफसर थे,वह युद्ध-स्थलपर नहीं भेजी गयी। उनकी यह प्रबल इच्छा थी कि वे युद्धमें शामिल हों, अतएव उन्होंने अपना तबादला कज्जाकोंकी एक रेजीमेण्टमें करा लिया और उसीका नेतृत्व ग्रहण करके कौकेससकी लड़ाईमें चले गये। उस समयतक उनके हृदयमें मातृभूमिके लिये प्राणार्पण करनेवाली फौजके अफसरोंके लिये बड़ा सम्मान था, पर साथ ही वह फौजके सिपाहियोंको भी उतनी ही ऊँची निगाहसे देखते थे, जितनी फौजके बड़े-बड़े ओहदेदारोंको; क्योंकि उनकी सम्मति में वे भी तो देश-हितके लिये ही अपने प्राण अपनी हथेलियोंपर रखकर रणभूमिको जाते हैं। लेकिन अन्तमें वह फौजकी नौकरीको घृणाकी दृष्टिसे देखने लगे तथा मातृभूमिके नामपर होनेवाले युद्धके प्रबल विरोधी हो गये।

एक दिन तुर्कोंकी खोजमें घूमते हुए प्रिन्स खिलकौफने एक तुर्कको पाकर उसे अपने हाथों मार डाला। क्षणिक आवेशमें आकर उन्होंने उसका प्राण तो ले लिया, पर इसके बाद ही यह सोचकर कि उन्होंने एक निर्दोषीका खून कर डाला है, उन्हे बड़ा पश्चात्ताप हुआ। और इसके लिये उपवास करके प्रायश्चित्त करनेका निश्चय किया। कई दिनोंतक वह घटना उनके दिमागमे चक्कर काटती रही। यहाँतक कि उन्होंने फौजकी नौकरीसे इस्तीफा देनेतकका विचार कर लिया, पर उस रेज़िमेण्टके कर्नलके विरोध करनेपर रुक गये। इसके बादकी एक दूसरी घटनासे भी उन्हें बड़ी निराशा हुई तथा उनके पूर्व कथित मतकी पुष्टि हुई।

ग्राण्ड ड्यूकके जन्म-दिनके उपलक्षमें एक फौजी परेडका आयोजन किया गया था तथा वह (ग्राण्ड ड्यूक) और फौजके अन्यान्य पदाधिकारी बड़े उत्साह और आनन्दके साथ इस उत्सवमे भाग ले रहे थे। इतनेमें ही जख्मी सिपाहियोंसे लदी हुई एक घोड़ागाड़ी वहाँ आ पहुंची। जख्मी सैनिकोंके आर्त्तनादसे आकाश गुञ्जायमान हो रहा था तथा गाड़ीके अन्दरसे खूनकी धारा बाहर निकल रही थी। बड़ा ही हृदय-विदारक दृश्य था, पर इसका वहाँके उपस्थित अफसरोंपर कुछ भी असर न हुआ। उसे चुपचाप जाने देनेके बजाय वे चिल्लाकर गाड़ीवालेको डाँटने तथा घोड़ोंपर चाबुक मारने लगे कि वे तेजीसे आगे बढ़ जायँ, पर इसका कुछ भी ख्याल न किया कि गाड़ीकी चोटसे ही उन जख्मियोंको इतनी पीड़ा हो रही थी!

युद्ध समाप्त होनेपर प्रिन्स खिलकौफ सेण्टपिटर्सवर्ग न आकर कौकेससमें ही उस कज्जाक रेजीमेण्टके साथ ठहर गये। वहांकी प्रजा तुर्क जातिकी थी, पर उनके ऊपर शासन करनेवाले अफसर रूसी थे। उनके अत्याचारोंका दृश्य देख-देखकर उनके दुखित हृदयमे और भी चोट पहुंचने लगी। कज्जाक सैनिकोंकी मददसे वे अफसर उनपर हर तरहकी सख्तियाँ करते थे तथा अपनी झोली भरनेको उन्हे लूटा करते थे। इन अत्याचारोंको देखकर प्रिन्स खिलकौफ बहुत दुखित होते थे और उन्होंने इसके खिलाफ आवाज उठाना भी शुरू कर दिया। जिसके कारण वे शीघ्र ही तुर्कोंके प्रीति-भाजन बन गये और वे उन्हें विश्वासकी दृष्टिसे देखने लगे। औरोंकी तरह प्रिन्स खिलकौफको यह भय न रहा कि अकेला पाकर कोई तुर्क उनकी हत्या कर डालेगा।

रेजिमेण्टके वे अफसर, जिनके जिम्मे खजाना था और जो खर्च-वर्चके लिये उत्तरदायी थे, कितने बेईमान थे और किस तरह अपने बड़े अफसरोंके जानते हुए भी रुपये हजम कर जाते थे और झूठे खर्चा लिखते थे—इन सारी बातोंका भी प्रिन्स खिल-कौफने भण्डाफोड करना चाहा। एक बार प्रायः २५,००० रूबल (रूसी सिक्का) गुम हो गये और कोई इसका पता न बता सका। उस रेजिमेण्टके सबसे बड़े अफसर प्रिन्स ओल्डेनवर्गको इस बातकी सूचना तक न दी गयी, पर प्रिन्स खिलकौफसे यह कहा गया कि भविष्यमे रेजिमेण्टके भोजन आदिका प्रबन्ध वह अपने हाथमें ले लें। उन्होंने कहा कि मुझे यह मंजूर है, पर शर्त

यह रहे कि भविष्यमें खर्चके हिसाबमें यथार्थतापर पूरा ध्यान रखा जाय और झूटे खर्चों को दर्ज न किया जाय। फौजके जनरलको यह स्वीकार न हुआ और उसने एक दूसरे व्यक्तिको इस पदपर मुकर्रर किया। परिणाम यह हुआ कि तीन ही मासके अन्तमें और भी कई हजार रूबल गायब हो गये। समस्या जटिल हो चली और अब जनरल महोदयको भी खौफ होने लगा। अतः हार मानकर उसने प्रिन्स खिलकौफकी शर्तें स्वीकर कर लीं तथा उन्हे इस पदपर नियुक्त किया। प्रिन्स खिलकौफने इस सचाई और चातुर्यके साथ इस कार्य-भारको निबाहा कि उस वर्षके अन्तमें रेजिमेण्टके सारे खर्चको काटकर और पिछली खोयी हुई रकमको पूरा करके भी ६८,००० रूबलकी बचत हुई।

पर अपनी इस ईमानदारी और न्यायप्रियताके लिये उन्हें शीघ्र ही जुर्माना देना पड़ा। लोग उन्हे 'साम्यवादी' कहकर उनकी आलोचना करने लगे और उनपर सरकारकी ओरसे खुफिया पुलिस तैनात की गई इन सारी बातों से विरक्त होकर उन्हों ने १८८० में फौजकी नौकरीसे इस्तीफा दे दिया और पालटवाके अपनी जमीन्दारीपर लौट आये तथा कृषकों की दशा-सुधारकी योजनाएं सोचने लगे।

उनकी माने उन्हे करीब १२ सौ एकड़ भूमि खेती करनेके लिये दी और शेषको अपने अधिकारमें रखा। प्रिन्स खिलकौफ तथा उनकी मांके दृष्टि-कोणमें बड़ा अन्तर था। वह रैयतों से जहांतक कम हो सके लेना चाहते थे पर उनकी मांका उद्देश्य

उठा और उस भागती हुई गर्भवती स्त्रीकी सूरतको वह लाख कोशिश करके भी अपनी आँखोंसे न भुला सके। अन्तमें एक दिन गाँवके मुखियोंको बुलाकर उन्होंने कहा कि मैं अपनी सारी जमीन किसानोंके हाथ केवल उतने ही मूल्यपर, जितना कि वह मालगुजारीके रूपमें देते हैं, बेच देना चाहता हूं। प्रिन्स खिलकौफकी इस बातपर पहले तो उन्हें विश्वास ही न हुआ, स्तब्ध होकर उनकी ओर देखने लगे। पर अन्तमें प्रिन्स खिलकौफने उन्हें विश्वास ही नहीं दिलाया, बल्कि अपनी सारी जमीन बराबर बराबर हिस्सेमें बाँट दी। इसके लिये जो उन्हें मूल्य देना पड़ा, वह नहीके बराबर था। अपने लिये उन्होंने एक कुटिया बना रखी थी। उसके आसपासकी थोड़ी-सी जमीन किसानोंने स्वेच्छासे उन्हें दे दी। तबसे वह उसी कुटियामें रहने तथा स्वयं ही उस जमीनकी जुताई करने लगे।

रूसमें उन दिनों गरीबोंपर पादड़ियोंका अत्याचार जारसे किसी कदर कम न था। ईसाई धर्मके पवित्र आदर्शोंको भूलकर वे केवल गरीबोंको चूसनेमें संलग्न थे। प्रिन्स खिलकौफको उनके दुष्कृत्योंको देख-देखकर उनसे इतनी घृणा हो गयी कि उन्होंने चर्च जाना एकदम ही छोड़ दिया। किसानोंने उनसे अनुरोध किया कि आप हमें इस धर्मके नामपर अत्याचार करनेवाले पादड़ियोंसे बचायें। उनके दुःखकी कथाएँ सुनकर प्रिन्स खिलकौफने बड़े पादड़ीके पास एक खत भी भेजा, पर उसका उल्टा ही परिणम हुआ। पादड़ियोंने सरकारी अधिकारियोंसे जाकर प्रिन्स

खिलकौफकी जी-भर शिकायत की और कहा कि वह इस प्रान्त के क्रान्तिकारी दलके नेता ही नहीं, सर्वेसर्वा हैं। फल यह हुआ कि वह तथा उस गाँवके बीस और किसान शीघ्र ही मजिस्ट्रेटके सामने बुलाये गये और उनपर धर्म-विरोधी होनेका जुर्म लगाया गया। पर जब मुकदमेकी सुनवाई हुई, तो उनपर आरोपित दोष-का कोई प्रमाण न मिला, बल्कि उस गाँवके पुरोहितोंके दुष्कर्मों-का ही भण्डाफोड़ हुआ। अतएव अधिकारियोंने इस मामलेको शान्त कर देना ही उचित समझा। तदनुसार प्रिन्स खिलकौफ तथा वे कृषक, जिनपर मुकदमा चलाया गया था, छोड़ दिये गये। पर खारकौफके विशप महोदयने शीघ्र ही अपनी ओरसे एक फतवा निकाला, जिसमें सुधारवादियोंपर अभिशाप तथा गालि-योंकी बौछार की गयी। प्रिन्स खिलकौफने इस फतवेकी आलो-चना जोरदार किन्तु संयत् भाषामें लिखकर उसकी एक प्रति विशपके पास भेजी तथा कुछ कापियाँ किसानोंमे बाँट दीं। बदलेमें पादरियों तथा पुरोहितोंने यत्र-तत्र सभाएँ कीं और उनमें कहा कि देशके कई स्थानोंमें ये धार्मिक सुधारवादी किसानोंके द्वारा टुकड़े-टुकड़े कर दिये गये हैं। कहना न होगा कि उनका यह कथन सर्वथा निर्मूल था। धर्मके इन पुजारियोंको सत्यसे कोई वास्ता न था।

उन्हीं दिनों किसानोंके साथ जमीन्दारोंका भी आर्थिक कारणोंसे कुछ झगड़ा हो गया। सरकारी अधिकारियोंने हर तरहसे किसानोंको सताना शुरू कर दिया। एक गाँवके सभी

किसानोंपर कोड़े लगाये गये और कोड़े लगाते समय गवर्नर महोदय वहाँ स्वयं उपस्थित थे और किसे कितने कोड़े लगे, यह गिनते जाते थे। निर्दोष किसानोंके बदनसे खूनके जो छींटे निकलते थे, उनसे उनकी पोशाक लाल हो गयी थी! एक किसानके इसका विरोध करनेपर गवर्नरने हुक्म दिया कि इसपर दो-चार दर्जन कोड़े और लगाये जायँ! इस जुल्मकी शिकायत उच्च अधिकारियों तथा स्वयं जारके पास तक की गयी, पर इसका कोई फल न हुआ।

प्रिन्स खिलकौफको गवर्नमेण्टके अधिकारियोंने सन्देहकी दृष्टिसे देखना शुरू किया और गवर्नरने उन्हें मुलाकात करनेको बुला भेजा।

दोनोंके बीच जो बातें हुईं, उसका परिणाम यह हुआ कि वह पाँच वर्षके लिये देश-निर्वासित होकर सुदूर कौकेससको भेज दिये गये। जब उन्हें कैदी बनाकर पुलिस गाँवसे बाहर ले जा रही थी, उस गाँवके किसान अपने दरवाजोंपर खड़े होकर फूट-फूट कर रो रहे थे।

सन् १८८६ ई० में प्रिन्स खिलकौफने सिसिल विनर नामक एक रमणीसे विवाह किया, जिसके धार्मिक विचार भी उनके ही जैसे थे। अतएव यह विवाह प्रचलित प्राचीन धर्म-पद्धतिके अनुसार न हुआ और न इसमें किसी पुरोहितसे सहायता ली गयी। प्रिन्स खिलकौफ और सिसिल विनरकी शीघ्र ही सन्तानें हुईं—पर उन्हें भी उन्होंने चर्चके जलसे अभिसिक्त नहीं

कराया और उनका नाम बोरिस तथा ओलगा रखा। विधि-विरुद्ध सन्तान होनेके कारण उनका पिताके नाम तथा सम्पत्ति-पर कोई अधिकार न था और न वे सरकारके किसी विद्यालयमें शिक्षा ही पा सकते थे, किसी सरकारी पदके लिये वे उम्मीदवार भी न हो सकते थे।

१८९२ के फरवरीमें प्रिन्स खिलकौफको देश-निर्वासनका दण्ड मिला और जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, वह सुदूर कौकेससको भेज दिये गये। वहींके एक गाँवमें उन्होंने अपनी धूनी रमाई। छः मासके बाद उनकी स्त्री और बच्चे भी वहाँ आ पहुंचे तथा उनके साथ ही रहने लगे। पर शीतकालमे उस गाँवमें रहना अत्यन्त कठिन था। टूटी-फूटी झोपड़ियोंके सिवा वहाँ रहनेका कोई दूसरा स्थान न था और सड़कोंपर इतनी कीच थी कि बाहर निकलना मुश्किल था। जाड़ेभर प्रिन्स खिलकौफके बच्चे घरोंमें पड़े रहे और नाना प्रकारकी बीमारियोंसे पीड़ित रहे, पर वह वहाँसे हट नहीं सकते थे, क्योंकि अधिकारियोंका यह सख्त हुकम था कि वह उसी गाँवमें अपने पाँच वर्षके निर्वासन-दिवस बिताये। किन्तु वह अपने परिवारको वहाँ रखना नहीं चाहते थे। अतएव दूसरे साल जब शीतका आगमन हुआ, तो उन्होंने स्त्री तथा बच्चों को एक समीपवर्त्ती जर्मन निवासस्थानको भेज दिया और स्वयं अधिकारियों की आज्ञासे जब-तब वहाँ जाकर उनकी खोज-खबर लेने लगे।

इधर उनकी माँ, प्रिन्सेस खिलकौफने ज़ारके पास दरख्वास्त

दी कि प्रिन्स खिलकौफ तथा उनकी पत्नी मेरी पौत्र-पौत्रियोंका उचित रूपसे पालन-पोषण नहीं करतीं और उनके साथ क्रूरता-पूर्ण व्यवहार करती हैं। अतएव वे बच्चे उनसे छीनकर मुझे दे दिये जायँ। बस, जारने हुक्म दिया कि पुलिस उनके बच्चोंको उनसे छीनकर प्रिन्सेस खिलकौफके हवाले कर दे।

१८६३ के अक्टूबर महीनेमें एक दिन जब प्रिन्स खिलकौफ अपने परिवारकी खोज-खबर लेने उनके निवासस्थान पर गये हुए थे, पुलिसका एक अफसर कुछ सिपाहियोंके साथ वहाँ आ उपस्थित हुआ और बोला कि जारकी आज्ञानुसार मैं यहाँसे आपके बच्चोंको ले जाने आया हूं।

प्रिन्स खिलकौफ उसकी इस बातको सुनकर दङ्ग हो गये, कुछ कालतक उनके मुंहसे एक शब्द भी न निकला।

प्रिन्सेस खिलकौफ भी उक्त पुलिस-अफसरके साथ आयी थीं पर वह सामने नहीं आईं, बगीचेके एक ओर छिपी रहीं—जहाँ वे दोनों बच्चे खेल-कूद रहे थे। प्रिंस खिलकौफ इस आज्ञा-पत्रको देखकर इसकी सूचना देनेको अपनी पत्नीके पास गये और बच्चोंको भी लेते गये। पुलिसका वह अफ़सर भी उनके साथ-साथ गया, प्रिंसेस भी गयीं। फिर इसके बाद उन बच्चोंके बिदा होनेका समय आया। प्रिंस खिलकौफ तथा उनकी पत्नी उस पुलिस-अफसरके साथ तर्क करना चाहती थीं, पर वह रह-रहकर यही उत्तर देता था कि "मैं यह सब कुछ नहीं जानता, मुझे जारकी आज्ञाका पालन करना है।" बिचारे बच्चे उनकी बातोंको सम-

भनेमें असमर्थ थे, पर पिता-माताके दुःखका अनुभव कर रहे थे और उनकी छातीसे लिपटे हुए थे। पुलिसके अफ़सरने उन्हें अलग करना चाहा, पर वे अलग नहीं हुए। अन्तमें जबर्दस्ती वे अपने मां-बापकी गोदसे रोते-रोते अलग किये गये। रात भर वे थानेमें रखे गये। दूसरे दिन वे प्रिन्सेस खिलकौफके हवालेकर दिये गये और वह उन्हें साथ लेकर सेण्ट पिटर्सबर्गको रवाना हुईं।

आशा-मरीचिकाने फिर भी सिसिली विनरका संग न छोड़ा। वह यह सोंचती हुई कि शायद स्वयं सेण्ट पिटर्सबर्ग जाने तथा ज़ारके पास अर्जी देनेसे उनके बच्चे उन्हें लौटा दिये जाय। सेण्ट पिटर्सबर्ग आ पहुंची और ज़ारके प्राइवेट सेक्रेटरीसे मिलीं। लेकिन उनकी दरखास्त नामंजूर हो गई।

अन्तमें एक दिन वह पुनः ज़ारके सेक्रेटरीसे मिलीं और उनसे अनुरोध किया कि वह कम-से-कम एकबार उन्हे उनके बच्चोंके साथ मिला दें। उन्होंने इसे स्वीकार करके एक ख़त प्रिंसेसके नाम लिख दिया जिसे लेकर वह प्रिसेस खिलकौफके पास पहुंची। प्रिंसेसने उस खतको पढ़कर उनसे पूछा कि आप बच्चोंके साथ किस प्रयोजनसे मिलना चाहती हैं?

इस प्रश्नको सुनकर उनके हृदयमें बड़ी पीड़ा हुई और उन्होंने आवेशके साथ उत्तर दिया कि आपको यह प्रश्न ही न पूछना था।

प्रिंसेसने यह कहते हुए कि "अच्छी बात है, पर आप आध घण्टेसे ज्यादा उनके साथ नहीं ठहर सकतीं, उनके दोनों प्यारे बच्चोंको उनके पास बुलवा दिया।

सिसिल विनरको यह देखकर और भी दुःख हुआ कि उसके बच्चे उन्हे पहचान न सके। ओलियाने कहाः—

"तुम किसी दूसरेकी माँ हो, हम दोनोंको माँ नहीं है।"

बोरिसने कहाः—

"आयाने तो कहा था, कि हम दोनोंकी माँ मर गयी।"

सिसिलीने उन्हें समझाया कि उसने उन्हें गलत बात बतलायी थी, उनकी माँ जीवित है और उनसे बहुत प्रेम करती है। उसे केवल इसी बातकी चिन्ता बनी रहती है कि उसके बच्चे कहीं उसे भूल न जाय।

आध घण्टा समाप्त हो जानेपर वह वहाँसे हटा दी गई।

अन्तमें निराश होकर सिसिली विनर अपने पतिके पास लौट आई। देश-निर्वासनकी अवधि समाप्त होनेपर प्रिंस खिलकौफ सपत्नीक कैनाडा चले गये और कुछ दिनोंतक वहीं रहे। फिर वे दोनों इङ्गलैण्ड गये और वहीं रहने लगे। बादमें उन्हें दो और सन्तानें हुईं—एक पुत्र और एक पुत्री, जिससे उनके दुखी हृदयको बहुत कुछ परितोष हुआ। १६०५ के 'कन्स्टीट्यूशनल मैनिफेस्टो' के प्रकाशनके बाद वे अपने पुराने स्थानको लौट आये और अपना समय खेती-बारीमें बिताने लगे।

वह अधखिली कली !

ज़ारके शासन-कालमें रूसका ऐसा कोई सरकारी पदाधिकारी न था, जिसे वहांकी जनता नीची निगाहसे न देखती हो। उनमें भी पुलिस-विभागके अफसर तो नीचताके ठेकेदार ही माने जाते थे, क्योंकि संसारका ऐसा कोई भी नीच कर्म न था, जिसे वे न करते हों। मनुष्यका कहांतक नैतिक पतन हो सकता है, इसका वे उज्ज्वल दृष्टान्त थे। एक ऐसे ही पुलिस पदाधिकारीके घरमें सोफी बारडिना जैसी नारी-रत्नका जन्म हुआ था।

सोफीके पिता इलारिअन बार्डिन एक अत्याचारी पुलिस-अफसर थे और उनका अत्याचार इतना बढ़ा-चढ़ा था कि स्वयं अपने घरमें भी वह इससे बाज नहीं आते थे। सोफी स्कूलकी परीक्षाओंको नामवरीके साथ पास करती गई और इसके लिये उसे प्रतिवर्ष पुरष्कार भी मिला। उच्च शिक्षा प्राप्त करनेको १८७१ में वह मास्को आयी और वहीं उसने सर्वप्रथम साम्यवादी एवं निहिलिस्ट विचार-धाराओंमें गोते लगाये।

मास्कोमें आचार-विचारकी पूरी स्वतन्त्रता तथा उच्च शिक्षाका पूरा सुभीता न होनेके कारण दो और छात्राओंके साथ कुछ ही दिनोंके बाद वह स्विजलैंण्डके ज्युरिच नामक स्थानके लिये

रवाना हो गई। वहाँ उन दिनों रूसके बहुत-सी युवक-युवतियाँ शिक्षा प्राप्त कर रही थीं। उनके साथ उसका शीघ्र ही काफी परिचय हो गया। देशके अपढ़ लोगोंके प्रति शिक्षित समाजका यह परम कर्तव्य होना चाहिये कि वह उन्हे जाकर शिक्षा प्रदान करे, उनमें जागृति लाये तथा उनके जीवनको सुखमय बनानेकी चेष्टा करे—ये विचार उसके मस्तिष्कमें बहुत दिनोंसे चक्कर काट रहे थे। ज्युरिच पहुंच कर ये और भी दृढ़ हो गये और उसने अपने इन विचारोंका वहाँ खूब प्रचार किया। देश-सेवाकी उस समय नवयुवकोंके हृदयमें कुछ ऐसी लगन लगी हुई थी और रूसकी दुरवस्थाकी उनके जीमें इतनी सख्त कसक थी कि सोफीके इन विचारोंको सबोंने खूब पसन्द किया और वहाँ विश्वविद्यालयकी उच्च शिक्षा प्राप्त करनेकी अभिलाषाका त्याग करके वे तत्काल रूस लौटकर किसानों और मजदूरोंके बीच शिक्षा-प्रचारका प्रोग्राम बाँधने लगे। सोफियाने उन्हें समझाया कि सहसा किसी काममें पड़ जाना बुद्धिमानी नहीं है इस कामको अपने ऊपर उठानेके पहले उन्हें समाज-शास्त्रका पूरा अध्ययन कर लेना चाहिये और स्वतन्त्र पेशेके लिये अपने आपको तैयार कर लेना चाहिये। अपने लिये उसने लेडी डाक्टरका पेशा अख्तियार करनेका निश्चय किया तथा और विषयोंकी पढ़ाई छोड़कर डाक्टरीका अध्ययन करने लगी।

उधर रूसी सरकारको जब ज्युरिचके रूसी छात्र-समाजकी ऐसी नीतिका पता चला तो उसने १८७३ के जून महीनेमें एक

आज्ञा-पत्र निकाला कि स्विजलैंण्डमें रहनेवाली सभी छात्राएँ विना विलम्ब रूसको लौट आयें। फलतः इच्छा नहीं होते भी उन्हे विवश होकर रूस लौट जाना पड़ा।

रूस लौटकर उन्होंने सेण्ट पिटर्सवर्गमें एक गुप्त क्रान्तिकारी-सभाकी स्थापना की और गुप्त रूपसे ही क्रान्तिका प्रचार करने लगीं। किसानों और मजदूरों को जारशाहीके खिलाफ उभाड़ने लगीं। मुट्ठी भर अल्पवयस्क छात्र और छात्राओंका जारशाही जैसी प्रबल शक्तिके विरुद्ध बगावतके झण्डे उठाना उनके साहस और उत्कृष्ट स्वातन्त्र्य-प्रेमका परिचायक है।

किसानोंके पास पहुंचना तो सहल था, डाक्टर, नर्स, शिक्षक, शिक्षिका बनकर वे ग्रामोंमें क्रान्तिका प्रचार कर सकते थे, और करते थे; पर कारखानोंकी चहार-दिवारियोंके अन्दर रहनेवाले मजदूरोंमें क्रान्तिका सन्देश पहुंचाना मुश्किल था। इसके लिये एक ही उपाय था—स्वयं मजदूर बनकर उनके अन्दर जा पड़ना। मजदूरोंका जीवन उन दिनों आजका-सा न था, उनकी दशा पशुओंसे भी बदतर थी। उन्हे जो भोजन मिलता था, वह इतना गन्दा और सड़ा हुआ होता था कि उसे मनुष्य खा सकता है, इसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। एक तो दुर्गन्धमय छोटी-छोटी कोठरियोंमें उन्हे सोना पड़ता था, तिसपर भी उनमे इतने आदमी एक साथ ठूसे रहते थे कि एक आदमीको सोने भरकी जगह भी मुश्किलसे मिलती थी। कमरोंमें उनकी गन्दगीके कारण कीड़ोंकी भरमार थी। जुआ खेलना, शराब

पीना, औरतों के साथ बलात्कार करना यह उनकी दैनिक क्रियाएँ थीं।

पर, कारखानोंके इस नीच जीवनसे तनिक भी विचलित न होकर तथा मजदूरोंके पास क्रान्तिका सन्देश पहुंचानेका कोई दूसरा उपाय न देखकर उन तरुण क्रान्तिकारियोंने उनमें मजदूर बनकर ही प्रवेश करनेका निश्चय किया और अपने नाम बदल कर उनमें जा घुसे। उन्हें दिन भर कड़ा परिश्रम करना पड़ता था। पर देशकी स्वतंत्रताके लिए वे सब कुछ सहते थे। पुरुषोंकी अपेक्षा उन तरुणी स्त्रियोंका साहस अधिक प्रशंसनीय है, जिन्हें इस कष्टमय जीवनके साथ-साथ दुश्चरित्र मजूरोंके आक्रमणका भी भय बना रहता था।

सोफी अन्नाके नामसे एक फैक्टरीमें दाखिल हुई। वहां उसने सर्वप्रथम फैक्टरीकी मजदूरिनोंको जगानेका प्रयत्न किया, पर वह निष्फल हुआ। दिन भरके कड़े परिश्रमके बाद किसमें इतनी शक्ति रहती थी कि वह उसकी बातोंपर ध्यान दे! पर इस असफलतासे वह जरा भी हतोत्साह नहीं हुई। उसने पुरुषों के बीच क्रान्तिके सन्देश पहुंचानेका निश्चय किया; पर एक तरुणी स्त्रीके लिये मजदूरोंके समाजमें उपस्थित होना बड़े खतरेका काम था। लेकिन एक दिन वह मजदूरोंके वासस्थानमें जा घुसी। अवसर पाकर उसनें एक रोचक उपन्यास पढ़कर उन्हें सुनाना शुरू किया परिणाम यह हुआ कि वह शीघ्र ही लोक-प्रिय हो गई तथा मजदूर उसे सम्मान और आदरकी दृष्टिसे देखनें तथा

उससे नयी कहानियाँ सुननेको उत्सुक रहने लगे। फक्टरीमें उसे पन्द्रह घण्टे नित्य काम करना पड़ता था पर चूंकि उसे इस बातका सन्तोष था कि वह मजदूरोंमें क्रान्तिके बीज बो रही है, सुकुमार शरीर होते हुए भी वह हँस-हँस कर इसे सह रही थी।

मजदूरोंके बलात्कारसे बचना असम्भव जानकर बहुत सी क्रान्तिकारी स्त्रियोंको फैक्टरियोंसे निकल जाना पड़ा पर सौभाग्य से सोफी बार्डिनाको ऐसा मौका न आया। मजदूर उसके साथ स्वयं ही बड़े सम्मानका व्यवहार करते थ। एक दिन उसके बाँटे हुए कुछ क्रान्तिकारी पर्चोंको फैक्टरीके मैंनेजरने देख लिया और उसे अपने आफिसमें उठा ले गया। अब और वहाँ ठह-रना उचित न जानकर सोफी बार्डिनाने एक दिन फैक्टरीसे प्रस्थान कर दिया।

उन दिनों सेंट पिटसवर्गमें क्रान्तिकारियोंने ऐसे बहुत मकान भाडेपर ले रखे थे, जिनमें क्रान्तिकारियोंकी मंत्रणाएँ हुआ करती थीं तथा भागे हुए क्रान्तिकारी गुप्त रूपसे रहा करते थे। ऐसे ही एक मकानमें सोफी बार्डिना भी आकर ठहरी। एक दिन क्रान्ति-कारी दलकी ही एक स्त्रीने जो बार्डिनाको पकड़वा कर अपने एक प्रेमीकी जान बचाना चाहती थी, उसके वासस्थानकी सूचना पुलिसको देदी और वह गिरफ्तार कर ली गई। उसके और बहुतसे साथी गिरफ्तार हो गये और उन सबोंके मुकदमेकी सुनवाई १८७६ में हुई जो "पचास क्रान्तिकारियोंकी सुनवाई" के नामसे विख्यात है।

सोफीको नौ वर्ष साइबेरियाकी खानोंमें काम करनेकी सजा मिली पर चूंकि दो वर्ष तक हवालातकी यातनायें सहनेके कारण उसके स्वास्थ्यका संहार हो गया था, यह सजा बदल दी गई और उसे साइबेरियाके इशिम नामक एक जघन्य स्थानमें आजन्म निवासका दंड मिला।

साइबेरियाका जीवन उसके लिये बड़ा ही दुःखदायक था, विशेपतः इसलिये कि वह अपनी सहचरियोंसे अलग नहीं रह सकती थी। चार वर्ष तक एकाकी जीवन बिता चुकनेके बाद उसने एक दिन भाग निकलनेका निश्चय किया और पन्द्रह दिसम्बर, १८८० को वहांसे यूरोपके लिये रवाना हो गई। राहमें अनेक यातनाएँ सहकर वह अन्तमें कज़ान पहुंची जहां उसके कुछ मित्र उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। सोफीको देखकर उन्हें बड़ा दुःख हुआ क्योंकि चार ही वर्पोंमें उसके शरीरकी दशा कुछ और ही हो गई थी—उसकी सुन्दरता, चपलता और शक्तिका बिल्कुल ही विनाश हो गया था।

कजानसे प्रस्थान करके वह रूस आई। अट्ठाइस मास तक इधर-उधर घूमती रही पर स्वास्थ्य खराब होने तथा पुलिसकी सूक्ष्म दृष्टिसे छिपते रहनेके कारण क्रान्तिकारी आन्दोलनमें कोई भाग न ले सकी। अन्तमें अपने कुछ शुभाकांक्षी मित्रोंके परामर्शसे वह रूस छोड़कर स्विजरलड चली गई और वहींके जेनेवा नामक स्थानमें रहने लगी। उसके मित्र उसको हर तरहसे सहायता पहुंचाते तथा उसकी सेवा करते थे, पर जीवनमें उसके

लिये कोई आकर्षण न रह गया था। उसे इस बातकी हार्दिक पीड़ा बनी रहती थी कि उससे देशकी कुछ भी सेवा नहीं हो रही है। अन्तमें तेरह एप्रिल, १८८३ को उसने आत्महत्या करनेका निश्चय कर लिया और अपने ऊपर आप ही पिस्तौल चला ली। दो बार असफल हुई, निशाना ठीक न बैठा, पर तीसरे दफे गोली उसके हृदयपर जा लगी और वह गिर पड़ी। दो घंटे तक वह पीड़ा अनुभव करती रही पर किसीको पुकारा नहीं, नौ बजे उसके मकानकी मालकिनने आकर उसे देखा और उसे तत्काल अस्पताल ले गई। वहाँ वह बारह रोज तक जीवित रही पर किसीने उसके मुंहसे आह निकलते नहीं सुनी। एकतीसवें दिन यह सुकुमार कलिका सदाके लिये मुरझा गई।

कुमारि वीरा फिगनर

रूसके शुशेलवर्ग नामक दुर्ग का नाम बहुत लोगोंने सुना होगा। यह एक भीषण कारागार था, जिसमें एकबार जाकर बिरला ही मनुष्य जीता जागता लौटता था। इस जेलके अधिकांश कैदी या तो पागल होकर अथवा आत्महत्या करके या सांघातिक रोगोंके शिकार बनकर शीघ्र ही सुरधाम सिधार जाते थे। श्लुशेलवर्गके कैदियोंको किसीसे मिलनेकी आज्ञा न थी। एक बार जो वहा भेज दिया जाता था, फिर उसकी कोई खबर संसारको नहीं मिलती थी। अत: जब १६०४ के अक्टूबर महीनेमें यह समाचार लोगोंको मिला कि वीरा फिगनर शुशेलवर्गके कारागारसे मुक्त हुई है तो उनके आश्चर्यका ठिकाना न रहा।

दस साल तक शुशेलवर्गमें कैद रहनेवाली वीराका जन्म एक कुलीन तथा धनी परिवारमें हुआ था। उसके पूर्वज फौजके मशहूर अफसर रह चुके थे। धनी समाजकी लड़कियोंकी जिस प्रकारकी शिक्षा-दीक्षा होती है, वीराकी भी वैसी ही हुई थी। वह शुरू से ही खुशमिजाज और चञ्चल थी, अतएव घरवाले

उसे बहुत चाहते थे। यह कौन जानता था कि उसका भावी जीवन श्लुशेलबर्ग-जैसे कुत्सित कारागारमें व्यतीत होगा। जार एलेकजण्डर द्वितीयका अनाचार अपनी पराकाष्ठाको पहुंच चुका था और रूसके शिक्षित-समाजमें उसके फलस्वरूप क्रान्तिकी आग सुलग रही थी। वीरा फिगनरकी उम्र उस समय बहुत कम थी। क्रान्ति-आन्दोलनमें भाग लेनेके योग्य वह न थी, पर अपनी बहनके साथ ज़ुरिचमें शिक्षा प्राप्त करती हुई वह क्रान्तिकारियोंके वाद-विवादको ध्यानपूर्वक सुनती थी तथा अपने देशकी दुरवस्था पर गंभीरतापूर्वक विचार करती थी।

इतनेमें ही, १८७३ मे, रूसके बहुतसे तरुण सुधारवादी गिरफ़्तार करके जेलमें डाल दिये गये, जिनमे वीराकी बड़ी बहन लीडिया तथा सोफी वार्डिना भी सम्मिलित थीं। वीराने इस संवादको सुनकर अपनी पढ़ाई स्थगित कर दी और अपनी भाई-बहनोंको सहायता पहुचानेके विचारसे रूस लौट आई। सौन्दर्य्य, शिष्ट स्वभाव एवं मीठी बातोंसे उसने जेलरके ऊपर प्रभाव जमा लिया और उसकी जानकारीमें ही वह जेलके उक्त राजनैतिक कैदियोंको हर तरहकी सहायता पहुंचाने लगी। कई वर्षों तक उसका यही कार्य-क्रम रहा पर, अन्तमे देशकी दशासे दुःखित तथा ज़ारशाहीके दुराचारको दिन प्रतिदिन बढते देखकर, वह क्रान्तिकारी दलके साथ जा मिली और बड़े उत्साहके साथ क्रान्ति-आन्दोलनमे भाग लेने लगी। वीरा पर जब आगे चलकर मुकद्दमा चला था तो उसमे सरकारकी ओरसे यह कहा गया था कि जारकी हत्या करनेकी जितनी चेष्टाएँ हुई उन

सबमें उसने प्रमुख भाग लिया था। समयकी भयंकरता साफ-साफ जाहिर थी। जारने क्रान्तिकारी आन्दोलनके मूलोच्छेदका दृढ़ संकल्प कर लिया था और एक-एककर प्रमुख क्रान्तिकारी फॉसीपर लटकाये जा रहे थे। पर विरा फिगनर इससे तनिक भी बिचलित नहीं हुई बल्कि दूने उत्साहके साथ क्रान्तिके संगठनमें लगी रही और फौजके सिपाहियोंको उभाड़नेकी चेष्टा करती रही। उसकी संगठन-शक्ति अलौकिक थी तथा उसके सुन्दर स्वभाव, मीठी बातों तथा विनोद-पूर्ण वाक्योंके कारण उसे अपने दलमें तो खूब लोकप्रियता प्राप्त थी ही, शत्रु भी उसें प्रेमकी दृष्टिसे देखते थे। क्रान्तिकारी-दलकी गुप्त सभाओंमें जब गूढ़ तथा जटिल समस्याओंपर विचार होता रहता था, उस समय भी वह हॅसी-मजाकसे बाज नहीं आती थी—साथ साथ उन प्रश्नोंपर खूब गम्भीरता पूर्वक बिचार भी करती थी।

जार अलेक्जण्डर द्वितीयका राज्याभिषेक होने जा रहा था। उसके मनमें यह शंका हुई कि सम्भव है, राज्याभिषेकके दिन क्रान्तिकारियोंकी ओरसे बिघ्न बाधा उपस्थित करनेके प्रयत्न हों। अतएव उसने उनसे सुलह करनेकी सोची, हालां कि उन दिनों क्रातिकारियोंका एक प्रकारसे दम निकल चुका था। जितने मुख्य क्रान्तिकारी थे या तो फासी पा गये थे या जेलोंमें सड़ रहे थे, केवल वीरा फिगनर बच रही थी। वह भी जान बचानेकी फिक्रमें खारकौफमें छिपी हुई थी क्योंकि पुलिस उसकी तलाशमें दिनरात चक्कर लगा रही थी। पर सरकारको इस दलकी निर्बलता तथा शक्ति हीनताका पता न था मिखेलव्स्की नामके एक व्यक्तिने खारकौफ जाकर सरकारकी ओर

से विराके साथ सन्धि-चर्चा छेड़ी। विराने क्रांतिकारी दलकी ओरसे कुछ शर्तें पेश कीं जो जारने मंजूर कर ली। पर राज्याभिषेकके सकुशल सम्पन्न होते ही वे उन्हे भूल गये।

१८८४ मे विरा फिगनरकी भी गिरफ्तारी हुई। जजोंके सामने जो उसने अपना बयान दिया था वह देशप्रेमसे भरा हुआ था। जजों ने उसे मृत्युदण्डका फैसला सुनाया। पर पीछे यह सजा बदलकर उसे बीस सालतक श्लुशेलवर्गके कारागारमें बंद रहनेकी सजा मिली। श्लुशेलवर्गके कारागारमे रहते हुए उसे कई बुरी बीमारियोंने जकड़ लिया और उसके स्वास्थ्यका संहार हो गया। तोभी बीस वर्षकी अवधि पूरी होनेपर सरकारने उसे रूसमें रहनेकी आज्ञा नही दी। वह आर्कटिक प्रदेशके एक गावको भेज दी गई। १६०५ के अक्टूबर महीनेमे जब राजनैतिक कैदी जेलमुक्त कर दिये गये तो उसे भी रूस लौट आनेकी स्वतंत्रता मिली।

श्लुशेलवर्गमें रहती हुई उसने कुछ कविताएँ लिखी थीं जो बड़ी ही सुन्दर और हृदयस्पर्शिनी हैं। इनके संबंधमे उसने स्वयं लिखा है कि "जब मैं अपनी मां तथा बहनका, अथवा मृत संगी-साथियोंका ध्यान करके दुःखसे अधीर हो जाती थी तो इन कविताओंकी रचना करती थी।"

———

एक भयंकर कैदी !

मातृभूमिकी बलिवेदीपर प्राण गंवानेवाले वीर हियोलाइट मुइश्किनका जन्म एक दास परिवारमें हुआ था और उसके पिता जबर्दस्ती फौजमें भरती किये गये थे। रूसके फौजी सिपाहियोंकी दशा उन दिनों और देशोंकी अपेक्षा कही गई-गुजरी थी। उनके बाल-बच्चेतक जारकी ही सम्पत्ति समझे जाते थे और सात वर्षकी उम्रसे वे सरकारके अधिकारमें आ जाते तथा "सरकारी बालक" के नामसे पुकारे जाते थे। उन्हें उसी उम्रसे सैनिक शिक्षा दी जाती थी जिसमें इस बातपर तनिक भी ध्यान नही दिया जाता था कि कौन कितना परिश्रम सहन कर सकता है। उन्हे सैनिक बनानेवाली मशीनमें डालते समय उनके स्वास्थ्यका कुछ भी ख्याल नहीं किया जाता था। उनके साथ हर तरहकी सख्तियां की जाती थी तथा शिक्षकोंका उनके साथ बड़ा ही क्रूरतापूर्ण व्यवहार होता था।

मुइश्किनकी शिक्षा-दीक्षा भी ऐसी ही एक फौजी पाठशालामें हुई। वहां उसने अपनी तीक्ष्ण बुद्धि तथा श्रमशीलताका परिचय दिया जिससे वह वहांकी शिक्षा समाप्त करके मास्कोके एक स्कूलमें भेजा गया। तदुपरांत फौजके एक जेनरलने उसे अपना अर्दली बनाकर अपने साथ रख लिया। अर्दलीके कामके साथ-साथ उसे

सेक्रेटरीके काम भी करने होते थे। उसके सेक्रेटरीकी हैसियतसे उसे एक बार ज़ारके साथ मिलने तथा वार्तालाप करनेका "सौभाग्य" प्राप्त हुआ था, और उसने यह अनुभव किया था कि ज़ार अलेक्जण्डर द्वितीयमे सिवा तड़क-भड़कके और कुछ नही है। साधारण मनुष्योंसे वह बुद्धि और योग्यतामें एक रत्ती भी अधिक नही है। उसके ऊपरसे ज़ारका रोब सदाके लिये जाता रहा।

पर ज़ार अलेकज़ण्डर द्वितीयने उससे प्रसन्न होकर उसे सरकारी स्टिनोग्राफर बना दिया।

सरकारी-स्टिनोग्राफरके पदपर काम करते हुए उसने जब कुछ पैसे कमा लिये तो एक स्वतंत्र व्यवसाय करनेका सोचा और मास्को मे एक छापाखाना खोल डाला। साथ ही अपने पूर्व पदपर भी बना रहा।

१८७३ मे मास्कोमें एक निर्वासित परिवारकी चार लड़कियां एक वयोवृद्ध स्त्रीके साथ आ उपस्थित हुईं। वे किसी छापाखानेमें अथवा पुस्तक विक्रेताके यहा नौकरीकी तलाश करने लगी। एक दिन अकस्मात् वे मुइश्किनके छापाखानेके पास आ पहुंची और मुइश्किनसे जाकर अपनी इच्छा प्रकट की। मुइश्किनने उन्हे तत्काल अपने छापाखानेमे रख लिया। उनके विचारोंके साथ उसके विचारोंका कुछ ऐसा सादृश्य था कि उन लोगोंके बीच शीघ्र ही काफी घनिष्ठता हो गई और उनका एक आध्यात्मिक परिवार-सा बन गया।

क्रांतिकारी विचारवाली उन युवतियोंने उससे प्रस्ताव किया कि

वह सरकार द्वारा जब्त पुस्तक-पुस्तिकाओंका प्रकाशन करे। मुइश्किनको यह प्रस्ताव पसंद आया और उसने उन युवतियोंके लिये एक कमरा खाली कर दिया और उसमें जब्त पुस्तक-पुस्तिकाओंके छापनेके सारे प्रबन्ध कर दिये। कुछ ही दिनोंमें उसके छापखानेसे क्रांतिकारी साहित्यका प्रकाशन खूब जोर-शोरके साथ, पर गुप्त रूपसे होने लगा। सराटफ नामक एक शहरमे उन क्रान्तिकारी स्त्रियोंके एक मित्र, ओइनारलसकीने बूट जूतोंका एक कारखाना खोला जो वास्तवमें मुइश्किनके द्वारा प्रकाशित क्रान्तिकारी साहित्यका मुख्य डीपो था। क्रान्तिकारी पुस्तक-पुस्तिकाएं तथा पर्चे मुइश्किनके प्रेससे छपकर सराटफकी बूट फैक्टरीको भेजे जाते थे। जिन बक्सोंमें बन्द होकर ये वहां जाते थे उनपर बूट, जूते, चमड़े इत्यादि शब्द लिखे होते थे, ताकि उनपर किसीको, विशेषकर पुलिस को सन्देह न हो। वहांसे बोलगा नदीके प्रान्तोंमें उनका प्रचार किया जाना था। क्रान्तिकारी आन्दोलनके विस्तारमें इनसे बड़ी सहायता मिली।

कुछ दिनोंतक यह क्रम जारी रहा, पर एक दिन पुलिसको सराटफकी बूट फैक्टरीकी असलियत मालूम हो गयी। मास्कोके छापाखानाके साथ इसका सम्बन्ध था, उसका भी पता चल गया। मुइश्किनकी अनुपस्थितिमें पुलिसके कुछ अफसर उसके छापाखानेमें आ धमके। चूंकि मुइश्किन अब भी स्टेट स्टिनोग्राफर बना हुआ था, उन लोगोंने उसकी अनुपस्थितिमें प्रेसकी खानतलाशी लेनी नही चाही, उसकी प्रतीक्षामें बैठे रहे। प्रेसके कर्मचारियोंने उनकी

आंखें बचाकर, बाहर खतरेका चिह्न लगा डाला। कुछ समयके बाद मुश्किन लौटा, पर उस चिह्नको देखते ही सचेत होकर वापस हो गया। इधर पुलिसके कर्मचारियोंने जब देखा कि वह नही आ रहा है तो अन्तमे मजबूर होकर प्रेसकी तलाशी ली। ढेरके ढेर क्रांतिकारी जब्त पर्चोंके बंडल देखकर वे दंग रह गये। घरके अन्दर जितने आदमी उपस्थित थे, उनमे वे औरते भी थी जिनकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है। वे सभी गिरफ्तार कर ली गईं।

मुश्किनकी सारी सम्पत्ति जाती रहीं। उसके मित्र भी गिरफ्तार होकर जेलमें जा पड़े। पर इससे वह जरा भी विचलित न हुआ, बल्कि बचे-खुचे क्रान्तिकारियोंके संगठनके उपाय सोचने लगा तथा प्रजा-पीड़क शासनके विरोधमें दूने उत्साहके साथ जा भिडा। क्रान्तिकारियोंका किस प्रकार जबर्दस्त सगठन हो और किस प्रकार उनमें एकताके भाव जागृत किये जायं—इस प्रश्नपर विचार करते हुए वह इस निर्णयपर पहुंचा कि ये उद्देश्य तबतक सफल नहीं हो सकते, जबतक क्रान्तिकारी आन्दोलनका नेतृत्व कोई ऐसा व्यक्ति न ग्रहण करे जिसपर सबका समान विश्वास हो और जिसका नाममात्र ही क्रांतिकारियोंके हृदयमें उत्साहका संचार कर दे। इस पदके लिये प्रसिद्ध उपन्यासकार तथा अर्थशास्त्रज्ञ निकलस शेरनिस्वेस्कीसे बढ़कर उपयुक्त कोई दूसरा नजर न आया, क्योंकि उनका मशहूर उपन्यास 'श्तोद्रियेला' उन दिनों क्रान्तिवादियोंका बाइबिल हो रहा था। विशेष कर युवकोंके हृदयपर तो उसने अपनी इस कृतिके कारण पूरा अधिकार कर लिया था।

स्वीकार करते हुए उसकी रक्षाके लिये दो सशस्त्र कज़्ज़ाक सिपाहियोंको उसके संग कर दिया। कज्जाकोंको यह गुप्त आज्ञा दी गई कि वे मुइश्किनपर पूरी निगरानी रखें और उसे किसी तरह भी अपने पंजेसे निकलने न दें। विलुइस्कसे जो राह याकुस्क जाती थी, उसकी दोनों ओर बीहड़ वन तथा बड़े-बड़े पहाड़ थे, जिनमें हिंसक पशुओंकी भरमार थी। पर मुइश्किनके लिये उन कज़्ज़ाकोंके शिकंजेसे किसी तरह निकलकर उस बनमें भाग जानेके सिवा प्राण बचानेका कोई दूसरा उपाय न था, क्योंकि यह निश्चय था कि अगर वह गवर्नर-जेनरलके पास पहुंच जाता, तो उसकी कलई अवश्य खुल जाती और वह मृत्यु-दण्डका भागी होता। पर उन सिपाहियोंसे बच निकलना भी कोई आसान काम न था। अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित वे चौबीस घण्टे उसकी निगरानीमें तैनात रहते। पर एक दिन ऐसा मौका आया जब कि मुइश्किन अपने प्रयत्नमें सफल हुआ और उनके पंजेसे निकल भागा; पर दुर्भाग्यने उसका संग न छोड़ा और सरकारकी ओरसे उसकी खोजमें सैकड़ों आदमी उस जंगलमें भेजे गये। पूरे एक सप्ताहतक वह उस बीहड़ वनमें भागता रहा, पर अन्तमें भूख तथा श्रमसे क्लान्त होकर मृतप्राय अवस्थामें एक दिन पकड़ लिया गया।

मुइश्किन जिस जेलमें रखा गया था, वह बड़ा ही भयानक था और उसमें अमानुषिक पीड़ा पहुंचानेके सभी साधन मौजूद थे। मुइश्किनको कभी-कभी इतनी पीड़ा पहुंचाई जाती थी कि

उसकी चिल्लाहटसे सारा कारागार कम्पायमान हो उठता था। तीन सालतक वह इसी जेलमे पड़ा हुआ अपने मुकदमेकी सुनवाई का इन्तजार करता रहा। अन्तमें १८ अक्टूबर, १८७७ को एक-सौ बानवे और राजनैतिक अपराधियोंके साथ वह अदालतमें लाया गया और उनका विचार शुरू हुआ। उसपर राजद्रोही संस्थाके सदस्य होनेका दोषारोपण हुआ। इस जुर्मसे गिरफ्तार किये गये व्यक्तियोंकी संख्या कुल दो सौ चौंसठ थी, पर मुकदमेके प्रारम्भ होनेतक इनमें पचहत्तर हतभाग्य कैदी जेल-यातनाओंके सहनेमें असमर्थ होकर काल-कवलित हो चुके थे।

ज्यादा कैदियोंने कोई भी कार्रवाईमें भाग लेनेसे साफ इन्कार किया। इसका कारण सर्जियस सिनगबके जीवन-वृत्तान्तमें लिखा जा चुका है। यह पूछे जानेपर कि तुम्हे अपने सम्बन्धमे कुछ कहना है, मुइश्किनने एक ओजस्वी भाषण देना शुरू किया, पर प्रधान जज उसे ऐसा करनेसे रोका, जिससे क्रोधित होकर उसने बड़े जोरसे कहा—"यदि मैं सरकारके कामोंकी आलोचना करनेसे वर्जित किया जाता हूं, तो मैं यह कह देना चाहता हूं कि आप एक न्यायाधीशके प्रतिनिधि नहीं हैं, बल्कि एक लज्जास्पद प्रहसनके अभिनेता हैं।" मुइश्किनकी इस बातपर न्यायाधीशने यह आज्ञा दी कि वह कठघरेसे बाहर किया जाय, पर न्यायालयके एक कर्मचारीके उसके पास पहुंचते ही दो और कैदी उठकर उसके पास पहुंच गये और उसके साथ हाथापाई करने लगे।

इसके बाद जेल तथा कोर्टके कर्मचारियोंने डंडोंसे कैदियोंको

पीटना शुरू किया और सारी अदालतमें कोहराम मच गया। जज उठकर भाग गये, औरतें इस दृश्यको देखकर बेहोश हो गईं और 'खूनी! जंगली! वे कैदियोंकी जान ले रहे हैं' आदि शब्दों से सारा मकान गूंज उठा।

मुइश्किनको दस वर्षके लिये सख्त कैदकी सजा मिली। वह खारकौफकी जेलमें रखा गया। यहाँके राजनैतिक कैदी या तो पागल हो जाया करते थे या शीघ्र ही संक्रामक रोगोंके शिकार बनकर सुरलोक सिधार जाते थे। मुइश्किनने एकबार यहाँसे निकल भागनेकी चेष्टा की, पर सफल नहीं हुआ। अन्तमें यह सोचकर कि कुछ दिन और यहाँ ठहरनेसे मैं पागल हो जाऊँगा, उसने आत्महत्या कर लेनेका निश्चय किया; पर आत्महत्याके लिये भी साधनोंकी जरूरत होती है, जो वहाँ प्राप्य न थे। अतः उसने कोई ऐसा कसूर करनेका विचारा, जिसके लिये प्राण-दण्ड दिया जाता हो। जेलके गवर्नरका अपमान करना ऐसे ही कसूरोंमें था। एक दिन अवसर पाकर उसने गवर्नरके मुंहपर दो तमाचे लगा दिये, पर ऐसा करनेपर भी उसे प्राण-दण्ड नहीं मिला, बल्कि पागल समझ कर छोड दिया गया।

इस घटनाके कुछ दिनोंके बाद वह अन्य राजनैतिक कैदियोंके साथ पूर्वीय साइबेरियाके कारा प्रान्तकी खानोंमें भेजा गया। राहमें उसने अपने साथके कैदीकी अन्त्येष्टि-क्रियाके समय, जो यात्राके कष्टों तथा सर्दीके कारण मर गया था, उसने एक ओजस्वी भाषण दिया, जिसके लिये उसे दसकी सालकी सजा दी गयी।

काराकी राजनैतिक जेलके सम्बन्धमें बहुत कुछ पहले लिखा जा चुका है। मुइश्किन भी इसी जेलमें लाकर रखा गया, पर यहाँ आकर भी वह हताश न हुआ, बल्कि पुनः जेलसे किसी प्रकार निकल भागनेका उपाय सोचने लगा। पर काराके इस दारुण कारागारसे निकल भागना कोई सहज काम न था। कैदियोंपर कड़ी निगरानी रखी जाती थी। दीवारोंपर तीक्ष्ण काँटे जमाये गये थे और जेलके बाहर चौबीसों घण्टे सन्तरी घूमा करते तथा चौकन्ने रहा करते थे, तो भी मुइश्किन ही नहीं, बल्कि सात और राजनैतिक कैदी इस भीषण जेलसे भी निकल भागे।

पहली रातको मुइश्किन तथा एक और राजनैतिक कैदीने दीवार फाँदकर परित्राण पाया। पर दूसरे दिन जब छः अन्य कैदी दीवार फाँद रहे थे, तो एक पानीके गड्ढेमें जा गिरा जिसकी आवाज सुनकर सन्तरीने चौकन्ना होकर उसकी ओर गोली चलाई। निशाना ठीक न लगा, वह बच गया, पर उसकी गोलीकी आवाज सुनकर जेलके अन्यान्य कर्मचारी जग गये और शीघ्र ही जेल भरमे खतरेकी घण्टी बजने लगी तथा कैदियोंकी हाजरी ली जाने लगी। मुइश्किन आदि आठ कैदियोंके गायब होनेका तुरन्त ही पता चल गया। फिर क्या था? सारे पूर्वीय साइबेरियामें धड़ाधड़ तार भेजे जाने लगे। भागे हुए कैदियोंकी तसवीरें पुलिस-अफसरोंके पास भेजी गयीं। जंगल, पहाड़, गाँव, शहर आदि सभी स्थानोंमें इनकी खोज होने लगी। मानों, इनके न पकड़े जानेसे रूसका सारा साम्राज्य ही उलट-पुलट हो जाता।

मुइश्किन तथा उसके सात साथी समुद्र-तटपर पहुंच कर अमेरिकाके लिये रवाना होने-ही-वाले थे, कि गिरफ्तार कर लिये गये। उनका पुनः गिरफ्तार हो जाना आश्चर्यकी बात नहीं। आश्चर्य तो यह है कि इतने थोड़े दिनमें और इतना कड़ा अनु-सन्धान होते हुए भी, कड़ी सर्दी तथा रास्तेके अन्यान्य असह्य कष्टोंको सहकर, वे कारा जेलसे कई सौ मील दूर चले गये थे। मुइश्किन तो कारा-कारागारसे दो हजार मीलसे भी अधिककी दूरीपर गिरफ्तार हुआ। वह समुद्र तटपर पहुंच कर जहाजपर चढ़ने-ही-वाला था कि पुनः गिरफ्तार कर लिया गया।

मुइश्किन तथा उसके साथी 'अत्यन्त भयङ्कर' कैदियोंकी श्रेणीमें रखकर श्लुशेलवर्गकी जेलमें पहुंचाये गये और उनके साथ अत्यन्त कठोर व्यवहार होने लगा।

मृत्युने सर्वप्रथम मुइश्किनकी ही पुकार सुनी। उसने एक दिन पुनः जेलके गवर्नरको थप्पर लगाये, जिसके लिये वह कोर्टमार्शल के सुपुर्द हुआ और शीघ्र ही श्लुशेवर्गकी भीषण चहारदीवारियोंके अन्दर गोलीका शिकार हुआ।

———

वह दीवानी लड़की !

——:*०।०*:——

सोफी पेरोपस्कायाका जन्म एक उच्च जमींदार-वंशमें हुआ था। उसके परिवारके लोग पूर्वकालसे ही ऊँचे सरकारी ओहदों पर मुकर्रर होते आये थे और सरकारमे उनका काफी सम्मान था उनके एक पूर्वजने पीटर-दी-ग्रेटकी एक पुत्रीका पाणिग्रहण किया था। सोफीके दादाने सरकारके शिक्षा-विभागके मंत्रीका पद सुशोभित किया था और उसके पिता सेंटपिटर्सवर्गके गवर्नर-जेनरल थे।

सोफीका जन्म १८५३ की पहली सितम्बरको हुआ था। उसकी शिक्षा-दीक्षाका सारा श्रेय उसकी मां को है और अपनी मांके लिये उसके हृदयमें अगाध प्रेम था। उसकी माँ पढ़ी-लिखी तथा दयालु स्वाभावकी रमणी थीं तथा उनकी यह हार्दिक अभिलाषा थी कि उनकी संतान खूब शिक्षिता हो। पर उसके पिताका स्वभाव ठीक इसके विपरीत था। वह बड़े ही क्रूर तथा निरंकुश स्वभावके थे, अतएव उनमें तथा उनकी स्त्रीमें सदा मनोमालिन्य बना रहता था।

सेंटपिटर्सवर्गमें सोफीके पिताकी बड़ी धाक थी और शहरके

उसके पास इन लड़कियोंका जिन्हें वह 'निहिलिस्ट' के नामसे पुकारते थे, आना बन्द कर दिया और उसके ऊपर तरह-तरहकी सख्तियां करने लगे। अन्तमें, पिताके अत्याचारोंसे बचनेका कोई दूसरा उपाय न देखकर, एक दिन अपनी मांकी रायसे वह घर छोड़कर चली गयी। उसके पिताने तत्काल इसकी सूचना पुलिस को दे दी और इसमें शक नहीं कि पकड़ी जानेपर वह उसे कोई कड़ा दंड देते, पर अपने पुत्रके बहुत कहने-सुननेपर वह इस बातके लिये राजी हो गये कि सोकी उनसे अलग रहे, पर इसके पहले उन्होंने यह वादा करा लिया कि भविष्यमें वह कभी उन्हें अपना मुंह न दिखायगी। इसके बाद उसे जब कभी अपनी माँ अथवा भाई-बहनोंसे मिलना होता, छिपकर अपने पिताकी अनुपस्थितिमें आकर उनसे मिलती थी।

धीरे-धीरे सोकीका क्रान्तिकारी दलके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया और कुछ ही दिनोंमें वह इस आन्दोलनकी प्रमुख कार्य-कर्त्री बन गयी। उन्हीं दिनों सोनिया तथा सिनगबसे भी उसका परिचय हुआ।

रूसमें उस समय गिरफ्तारियोंकी धूम थी। आखिर सोकी कबतक बच सकती थी। १८७५ की गर्मीमें वह भी गिरफ्तार कर ली गयी, पर अपनी मांके उद्योगसे शीघ्र ही छोड़ दी गयी। उसके बाद उसकी माँ उसे साथ लेकर क्रीमिया चली गयी और वहीं रहने लगी। सोकीने डाक्टरीका अध्ययन शुरू किया ताकि वह डाक्टर बनकर किसानोंकी कुछ सेवा कर सके, और थोड़े ही

दिनोंमें उसने इसमें काफी योग्यता हासिल कर ली। किन्तु राज-नीतिक बातोंसे अधिक सम्बन्ध न रखनेपर भी १८७७ के शीत-कालमें वह पुन पकड़ ली गयी तथा 'एक सौ तिरानवे कैदियोंके विचार' में उसे भी शामिल किया गया, पर सजा न हुई, छोड़ दी गयी। तत्पश्चात् वह अन्य राजनीतिक कैदियोंको, जिनके साथ जेलमे उसकी मैत्री हो गयी थी, जेलसे निकालनेके प्रयत्न करने लगी; पर सफलता नहीं हुई।

इधर ज़ारशाही सरकारने और भी भीषण रूप धारण किया। 'एक सौ तिरानवेके विचार'वाले अन्य क्रान्तिकारियोंको सख्त सजा मिली। पर उनके बादके राजनीतिक अपराधियोको साम्य-वादका प्रचार करनेके अपराधमे मृत्यु-दंड दिया जाने लगा। फल यह हुआ कि बहुतसे शान्तिपूर्ण कार्यकर्त्ताओंने आतङ्कवादकी शरण ली और एक आतङ्कवादी संस्थाकी नींव डाली। सोकी पेरोपस्कायाने बहुत सोच-विचारके बाद उसका सदस्य होना स्वीकार कर लिया। उसके एक प्रवासी मित्रने विदेशसे उसके पास एक खत भेज कर उसे वहा जानेको आमंत्रित किया। उत्तर में सोकीने लिखा कि 'विदेशमें कर्तव्यहीन जीवन बितानेकी अपेक्षा मैं रूसमे फासीपर लटकना कहीं ज्यादा पसन्द करूँगी।' आगे चलके उसका यह मनोरथ भी पूर्ण हुआ।

उपर्युक्त क्रान्तिकारी संस्थाकी सदस्या बन कर सोकी जी-जानसे क्रान्तिकारी आन्दोलनमे लग गई तथा उसने अद्भुत साहस एवं संगठन-शक्तिका परिचय दिया। १८७९ में मास्कोमें

जो ट्रेन उलटनेकी चेष्टा की गयी थी उसमें उसका सबसे ज्यादा हाथ था। इस प्रयत्नके विफल होनेके बाद आतङ्कवादियोंने जार अलेकजण्डर द्वितीयकी हत्या करनेका निश्चय किया और इसके प्रबन्धका सम्पूर्ण भार सोकीके कन्धोंपर डाला गया। सेंट पिटर्सवर्गकी एक सडकसे जार अलेकजण्डर बहुधा फौजी स्कूलको जाया करते थे। आतङ्कवादियोंने इसी सड़कपर उनकी हत्या करनेका निश्चय किया और इसके लिये दो उपायोंका अवलम्बन किया। प्रथम तो उन्होंने सड़कके नीचे सुरग खोदकर बारूद भर दिये ताकि जब जार उसके ऊपरसे जाने लगें तो बारूदमे आग लगाकर सडकका वह हिस्सा उड़ा डाला जाय। दूसरे उनमेंसे कुछ व्यक्ति जारके राजप्रासादके पास बम लेकर खडे हो गये कि अगर सडकका उडना सफल न हो सके तो वे जारकी गाडीपर बम फेंककर, उनकी हत्या कर डालें। सयोगवश फौजी स्कूलसे लौटते समय जार उस ओरसे नहीं लौटे जिस ओर वे उनकी प्रतीक्षामें खड़े थे। सोकीने रूमाल हिलाकर उन्हे आदेश दिया कि वे फौरन उस सडकपर चले जायँ जिससे वह वापिस हो रहे थे। उन्होने ऐसा ही किया। जब जार उनके सामनेसे गुजरने लगे तो उनपर बम फेंका गया जिससे उनकी गाड़ी चूर-चूर हो गई तथा चौदह शरीर-रक्षक मर गये। वह स्वय बच गये, पर इसके बाद ही जब वह मृत व्यक्तियोकी ओर बढ़े, तो एक दूसरे षड्यंत्रकारीने उनपर पुनः बम फेंका जिससे वह जख्मी हुए तथा बम फेकनेवाला स्वयं भी मृत्युकी गोदमे जा पड़ा।

एक घण्टेके भीतर ही जार अलेकजण्डर भी इस संसारसे चल बसे।

ज़ारकी हत्याने सारे नगरमें आतङ्क फैला दिया तथा सरकार क्रोधसे पागल हो उठी। देश भरमें गिरफ्तारियोंकी धूम मच गयी। केवल सेंटपिटर्सवर्गमें दो दिनोंके अन्दर करीब आठ सौ आदमी गिरफ्तार हो गये। दिन भर पुलिस तथा कज्ज़ाक सिपाही सड़कोंपर घूमा करते तथा जिसपर जरा भी सन्देह होता उसे गिरफ्तार कर लेते थे। जारकी हत्यासे सम्बन्ध रखनेवाले प्रायः सभी क्रान्तिकारी गिरफ्तार हो गये, केवल सोकी बच रही थी, पर उसके भी ज्यादा दिन बचनेकी आशा न थी, क्योंकि पुलिस दिन रात उसकी तलाशमें चक्कर काट रही थी। उसके मित्रोंने उसे बहुत समझाया कि वह सेंटपिटर्सवर्ग छोड़कर किसी दूसरे स्थानको चली जाय, पर उसने उनकी बात न मानी। बल्कि खुले-आम सड़कोंपर घूमती रही। आश्चर्य है कि पुलिसको उसके ढूंढ़नेमें इतने दिन लगे। अन्तमें एक दिन जब वह भाड़ेकी एक गाड़ीपर चढ़ कर संटपिटर्सवर्गके बाजारसे गुजर रही थी, दूध बेचनेवाली एक औरतने, जिससे वह कुछ दिन पहले दूध खरीदा करती थी, उसे पुलिसके हाथ गिरफ्तार करवा डाला।

ज़ारकी हत्याके सम्बन्धमें गिरफ्तार किये गये सभी क्रान्तिकारियोंको फांसीकी सजा मिली तथा पन्द्रह अप्रिल, १८८१ को वे फाँसीपर लटका दिये गये। जिस दिन उन्हे फांसी मिलनेवाली थी उससे छः सात दिन पूर्वसे उन्हें तरह-तरहकी पीड़ाएँ

दी जाती थीं ताकि वे अन्य षड्यन्त्रकारियोंके नाम बतला दे। पर उनमेंसे एकने भी किसी दूसरेका नाम नहीं बतलाया। उनके सम्बन्धियोंने बहुत चेष्टा की कि प्रचलित प्रथानुसार उन्हे उनसे मरनेके पहले एक बार मिलनेकी इजाजत मिले, पर अधिकारियोने इस बार ऐसा करनेसे साफ़ इन्कार किया। सोकीकी माने क्रीमियामे उनकी गिरफ्तारीका संवाद पाया। दौड़ी हुई सेटपिटर्सबर्ग आयी और सोकीसे मिलनेकी इजाजत चाही, पर उसके लाख कोशिश करनेपर भी उसे सोकीसे मुलाकात करनेका हुक्म न मिला। हा, जब वह गाड़ीपर चढ़कर बध-स्थान को जा रही थी तो उसकी माँको दूरसे ही उसे दिखला दिया गया। मृत्युके पहले उन्होंने एक पत्र अपनी माको लिखा था जिससे उसकी स्नेह पूर्ण प्रकृति तथा उत्कट देशप्रेमका परिचय मिलता है। उस पत्रमे उसने अपनी माको लिखा-'मुझे केवल इस बातका दुःख है, और इसका ध्यान करके मेरा हृदय टुकड़े-टुकड़े हुआ जा रहा है, कि मेरी मृत्युसे, प्यारी मा, तुझे अपार दु ख होगा।'

सोकीसे जिसकी थोड़ी भी पहचान थी उसने उसके गुणोंकी दिल खोलकर तारीफ की है। प्रिन्स क्रोपटकिनने अपने स्मृति-ग्रन्थमें उसकी बड़ी प्रशसा की है।

———

सुरंगकी राह जेलसे बाहर १
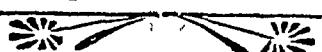
ग्रेगरी ऐन्ड्रीपिच गरशुनीकी गणना ज़ारशाहीके प्रबल शत्रुओंमें की जाती थी तथा आतंकवादियोंके वह नेता समझे जाते थे पर अपने राजनीतिक जीवनके आरम्भकालमें वह ऐसा न थे। इस बातका वह खास ध्यान रखते थे कि उनका कोई भी काम कानूनके खिलाफ न हो। पर कुछ ही दिनोंमें उन्हे यह अनुभव हो गया कि रूसमें शान्तिपूर्ण सुधारवादियोंके लिये भी कोई स्थान न था, क्योंकि देशकी आर्थिक दुरवस्था-जेसे निर्दोष विषयपर भी उन्हें ज़ुबान हिलानेकी इजाजत न थी। अन्तमें उन्होंने अधिकारियोंसे अनुमति लेनी छोड़ दी और अपने इच्छानुसार देशके आवश्यक प्रश्नोंपर अपने विचार प्रकट करने लगे। अधिकारियोंको भला यह कब सह्य हो सकता था? उन्होंने उनके साथ छेड़खानियाँ शुरू कर दी। फल यह हुआ कि ग्रेगरी क्रान्तिवादियोंके गर्म दलके साथ जा मिले और अन्तमें आतंकवादी हो गये। १९०४ के फरवरी महीनेमें जिन तीन व्यक्तियोंको सेंटपिटर्सवर्गके 'कोर्ट मार्शल' द्वारा सरकारके दो उच्च अधिकारियोंकी हत्याके अपराधमें फाँसीकी सजा मिली थी, उनमें एक ग्रेगरी गरशुनी भी थे।

पर गरशुनीको फांसी नहीं हुई। चूंकि मुकद्दमेमें यह प्रमाणित न हो सका था कि उक्त अधिकारियोंकी हत्यामें गरशुनी स्वयं शामिल थे। उन्हे फांसीकी सजा बदलकर आजन्म कड़ी कैद की सजा दी गयी तथा कुछ दिनोंतक श्लुशेलवर्गके जेलखानेमें रख कर वह पूर्वीय साइवेरियाके अकटुइ नामक जेलको भेज दिये गये।

अकटुइ आकर वह जेलसे निकल भागनेकी चेष्टामें लगे। पर अकटुइ जैसे भीषण जेलसे निकल भागना सहज न था। कई बार कैदियोंके जेलसे भागनेके प्रयत्न करनेके कारण, उन दिनों जेलोंमें पहरेकी कडाई कर दी गयी थी। अतएव जेलसे निकल भागना कठिन ही नहीं, असंभव-सा दीख रहा था। तोभी दुस्तर कठिनाइयोंके होते हुए भी, जेलके अन्य राजनीतिक कैदियोंने यह संकल्प किया कि किसी तरह गरशुनीको कैदसे अवश्य ही निकाला जाय। इसके लिये उन्होंने जिस उपायका अवलम्बन लिया उसे सुनकर सहसा सुननेवालेको विश्वास नहीं होता कि यह सच्ची घटना है।

साइबेरियाकी जेलोंके कायदे-कानून श्लुशेलबर्ग आदि जेल जैसे न थे। रूसकी जेलोंमें कैदियोंको अलग-अलग रहना पड़ता था, पर साइवेरियाकी जेलोंमें वे एक साथ रहते थे तथा उनके भोजन इत्यादिका प्रबन्ध भी उन्हींके हाथमें था—यानी कैदियोंकी एक समिति थी जो इनका प्रबन्ध करती थी। जेलके पुस्तकालय आदिका संचालन भी वे ही करते थे। सैकड़ों आदमियोंके भोजन का प्रबन्ध करना कुछ सहल काम न था। उन्हे इस कार्यमें काफी परिश्रम करना पड़ता था, खासकर शीत-कालके पहले जब उन्हें

महीनोंके लिये भोज्य-पदार्थोंका संग्रह कर लेना होता था, क्योंकि बर्फ गिरनेके कारण साइबेरियाके मार्ग कुछ महीनोंके लिये बन्द-सा हो जाया करते थे।

रूस-निवासियोंका सबसे प्यारा भोजन उबाली हुई गोभी है। जारसे लेकर जेलके कैदियोंतक इसका व्यवहार करते थे। प्रिय पदार्थ होनेके कारण शीतकालके आरम्भमें ही ढेरके ढेर गोभी खरीदकर बक्सोंमें बन्द करके भण्डार-गृहमें बन्द कर दी जाती थी। अकटुइ जेलके खाद्य पदार्थ गवर्नरके मकानके एक हिस्सेकी दो छोटी-छोटी कोठरियोंमें रखे जाते थे। यह मकान जेलके बाहर था, पर जेलके कैदी सन्तरियोंके साथ वहां भोजन-की सामग्री रखने अथवा ले जाने आया-जाया करते थे। जेलके फाटकपर इन सामग्रियोंकी खूब जांच-पड़ताल कर ली जाती थी तथा बाहर जानेवाले कैदियोंपर खूब कड़ा पहरा रखा जाता था।

जेलका यह नियम गरशुनीके उद्धारका कारण हुआ। गोभीके रूपमें उन्हे बक्समें बन्द करके बाहर निकालनेका निश्चय किया गया, पर इसमें कठिनाइयां बहुत थीं और यही कारण था कि अब तक इस उपायका किसीने अवलम्बन नहीं किया था। पहले तो गरशुनी तथा उसके साथ-साथ कुछ गोभी तथा तरल पदार्थके रखने योग्य एक बड़े बक्सकी जरूरत थी। फिर उसके सांस लेनेके लिये रबरके दो ट्यूबोंका होना भी अत्यन्त आवश्यक था। भण्डारवाली कोठरीमें सुरंगका खोदना तथा बाहरसे किसी आदमीका समय पर सूचना देना कि सब ठीक है; फिर जेलके

अन्दर ऐसा प्रबन्ध करना कि एक-दो दिनों तक गरशुनीके गुम होनेका पता न चले, इन सब बातोंके लिये उत्तम प्रबन्ध करना, वह भी जेल-वार्डरोंकी सूक्ष्म-दृष्टिके नीचे, साधारणतः असंभवही प्रतीत होता है। पर धन्य थे वे जेलके कैदी जिन्होंने जेलके अन्दर बन्द रहते हुए भी इन्हे कर दिखाया।

एक बड़े बक्स तथा दो रबरकी नलियोंका प्रबन्ध किया गया। तत्पश्चात् उन व्यक्तियोंसे, जिन्हे समय पूरा हो जाने पर जेल-मुक्त करके अकटुइसे दो-चार मीलकी दूरी तक जानेकी अनुमति दी जा चुकी थी, इस सम्बन्धमें परामर्श करके सुरंग खोदने तथा उपर्युक्त समय पर गरशुनीके उस सुरंगकी राहसे बाहर निकलनेकी सूचना देनेके काम उनके ऊपर सौंपे गये। फिर यह तय पाया कि गरशुनीको बक्समें बन्द करके प्रातःकाल ही जेलसे बाहर निकाला जाय, क्योंकि सुरंगके मुंहका दिनभर खुला रहना खतरनाक था।

निश्चित तिथि तथा समय पर बाहरसे सूचना मिली, कि सब ठीक है। फिर क्या था? गरशुनीके साथियोंमें बिजली-सी दौड़ गयी, जल्दी जरूरी प्रबन्ध होने लगा। इसके बादकी कथा गरशुनीने स्वयं ही लिखी है:—

"चोरकी तरह मैं उस कमरेमें पहुंचा जहां मेरे मित्र मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे तथा कुछ ही मिनटोंमें मैं बक्सके भीतर चला गया। मेरे सरके ऊपर वे चमड़े बांधने लगे तथा मेरे लिये संसार अंधकारमय हो गया। पर इतनेमे ही कोई पुकार उठा 'प्लेट, प्लेट। अरे मूर्खों! तुम प्लेट रखना भूल गये हो।' बात यह थी कि जेल

के फाटकसे बाहर जाती हुई चीजोंका निरीक्षण करनेवाला अफसर कहीं अपनी तलवारको गोभियोंके अन्दर चुभा न दे, इस भयसे सिरकी रक्षाके लिये, यह इन्तजाम किया गया था कि सिर के आगे लोहेका प्लेट लगा दिया जाय और इसी प्लेटको बाँधना वे भूल गये थे। शीघ्र ही प्लेट लाकर लगा दिया गया और मेरे कुछ मित्र, मेरे हाथ और सर को चूमने लगे तथा मुझे भीतरसे ये शब्द सुन पड़े 'बिदा, प्यारे मित्र! बिदा! सब कुछ ठीक है, शांत रहना।' इसके बाद चमड़ेके जिस बैगमें मैं बन्द था उसके चारों ओर कील ठोक दी गयी। धड़ाधड़ गोभियोंके गिरनेकी आवाज होने लगी, क्योंकि बक्समें मुझे गोभियोंसे छिपा डाला गया था। पर मेरा ध्यान केवल उन नलियों पर था कि वे टूटने न पाये। कुछ काल तक गोभियोंके गिरनेकी आवाज होती रही। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानों मैं जीवित अवस्थामें ही गाड़ा जा रहा हूं।

इसके बाद इस अभिनयके दूसरे अंकका प्रारम्भ हुआ। उन्होंने मुझे उठा कर एक ठेलागाड़ी पर रख दिया और मैं उस गाड़ी पर पड़ा-पडा भण्डार-घरकी ओर रवाना हुआ। कुछ देरके बाद मुझे 'फाटक खोलो' की आवाज सुनायी पड़ी तथा गाड़ी रुक गयी। कुछ काल तक दो-चार आदमियोंके बोलनेकी भनभनाहट मालूम हुई, तदुपरांत किसी ने जोर से कहा,—'जल्दी करो,' और फिर गाड़ी चलने लगी।"

गवर्नरके मकानके जिस कमरेमें कैदियोंके भोजनकी सामग्री

रखी जाती थी, उसके बगलमें एक दूसरा कमरा था जो छोटा तथा गन्दा था। चूंकि भण्डारवाले कमरेमें अफसरोंकी स्त्रियाँ बराबर आती-जाती रहती थीं, यह उचित नहीं समझा गया कि गरशुनीको उसमें रखा जाय, क्योंकि अगर गरशुनीके चमड़ेके बेगसे निकलते समय वें वहाँ आ पहुंचती तो फिर सारा बना-बनाया खेल बिगड़ जाता। अतएव बगलवाले कमरेसे ही सुरंग निकाला गया था तथा गोभीवाले बक्सको यह कह कर कि पहला कमरा गोभियोंके लिये काफी गम नहीं है, इसी छोटी कोठरी मे रखा गया। बक्सको उसके वजनके कारण, गाड़ीसे उतारना सहल काम न था। कई बार उसे ऊपर नीचे करना पड़ा तथा दो सैनिकोंकी मददसे लुढ़का कर वह कमरेके अन्दर पहुंचाया गया। निर्दिष्ट स्थान पर पड़ा पर वह नलियोंको खूब अच्छी तरह पकड़े रहे क्योंकि अगर वे टूट जाते तो कुछ ही देरमे सांस रुक जानेके कारण उनका प्राणान्त हो जाता।

दो-चार मिनटोंके अन्दर ही किसीने बक्स पर तीन बार ठोकरें दीं तथा जोरके साथ द्वार बन्द होनेकी आवाज सुनाई पडी। गरशुनी के बाहर निकलनेका यह संकेत-चिन्ह था।

पहलेसे यह निश्चित था कि बाहर से एक सहायक आकर सुरंगके मुहाने पर छिप कर बैठा रहेगा तथा द्वार बंद होते ही कमरेके अन्दर घुस आवेगा और गरशुनीको बेगके अन्दरसे निकलनेमें सहायता पहुंचावेगा। कुछ कालतक गरशुनी उसकी प्रतीक्षा करते रहे, पर वह नहीं आया। अन्तमें वह स्वयं ही बाहर

निकलने की चेष्टा करने लगे। उनके पास एक छुरी थी, पर उसका इस्तेमाल करना उनके लिये कठिन हो रहा था, क्योंकि अपने दोनों हाथोंको वह इस काममें नहीं लगा सकते थे। एक हाथ से सांस लेनेवाली नलीको पकड़े रहना आवश्यक था। उसके सहारे वह केवल एक छिद्रमात्र कर सके, पर उस छिद्रके होते ही उससे होकर बहुत-सी शराब उनके बेगके अन्दर आ घुसी, जिससे वह और भी ओतप्रोत हो गये तथा सांस लेनेवाली नली फट गयी। बड़े संकटमें पड़ गये। अगर थोड़ी देर भी वह उस बैगके अन्दर पड़े रहते तो प्राणसे हाथ धो बैठते। अन्तमें भगवानका नाम लेकर उन्होंने एकबार खूब जोरके साथ शरीरको ताना जिससे उसके कोर उखड़ गये और वे बाहर निकल आये। इस घटनाके सम्बन्धमें गरशुनीने लिखा है—"मैं जब प्रथम बार इस संसारमें आया था तो मुझे क्या परिश्रम करना पड़ा था, यह मुझे स्मरण नहीं, पर इस द्वितीय जन्मकालके समय तो मुझे बहुत ही परिश्रम करना पड़ा तथा अन्य नवजात शिशुओंकी तरह संसारमें आते ही शब्द करनेके बदले अपने आपको खूब शांत रखना पड़ा था।"

अभी वह सशङ्कित आँखोंसे चारो ओर देख ही रहे थे कि वह सहायक आ धमका। उसके आनेकी आवाज सुनकर वे और भी भयभीत हो उठे और छिपनेकी कोशिश करने लगे पर उसे देखकर जानमें जान आई।

फिर वे दोनों सुरंगके अन्दर घुसे तथा छातीके बल धीरे-धीरे आगेकी ओर बढ़ने लगे। सुरंगके मुहानेसे दो-चार कदम पीछे

आकर वे रुक गये, क्योंकि बाहरसे संकेत-चिह्न मिला 'खबरदार! रास्ता खाली नहीं है।' कुछ कालके बाद पुनः यही संकेत मिला; 'रास्ता साफ नहीं है।' वे वहीं पड़े रहे। सामने दो चार आदमियोंके आने-जानेकी आवाज मालूम पड़ी। वे सशङ्कित हो उठे। पर कोई खतरा नहीं आया। पुनः शान्ति हुई। पुनः बूट जूतोंकी मचमचाहट सुन पड़ी, सामनेसे दो सैनिक बातें करते निकल गये। रास्तेसे जाते हुए एक वार्डरके जूतेको पहचान कर पुनः भयभीत हो उठे। पर उसने भी सुरङ्गके मुंहकी ओर ध्यान नहीं दिया। चुपचाप पड़े हुए वे सङ्केत-ध्वनिका इन्तजार करने लगे। सामनेके मकानोंमें जेलके अधिकारियोंकी स्त्रियाँ किलकारियाँ मार रही थीं।

अकस्मात् दो चार लड़कोंके दौड़नेका शब्द सुनायी पड़ा। ये एक कुत्तेके साथ दौड़ रहे थे। पलभर में वह कुत्ता सुरङ्गके दरवाजे पर आकर खड़ा हो गया और भीतरकी ओर ताकने लगा। भयसे गरशुनी तथा उसके मित्रके शरीर सन्न हो गये। कहीं वह कुत्ता भूंकने लगे तो…… ……? या कुत्ते के पीछे-पीछे वे लड़के ही वहाँ आ उपस्थित हो तो…· ………? भय के मारे वे व्याकुल हो उठे, चेहरा स्याह् हो गया। पर वह कुत्ता कुछ काल तक उनकी ओर देखकर वापस हो गया। पुनः उनकी जानमे जान आयी। लड़के चले गये। कुछ काल तक शांति बनी रही, तथापि सङ्केतकर्त्ताकी ओरसे रह-रह कर यही संकेत आता रहा।' खबरदार! आगे न बढ़ना।'

—पर कुछ ही पलोंमें संकेत-चिह्न बदला—'सब ठीक है, चले आओ।' वे बाहर निकल आये तथा कुछ दूर पर खड़े हुए उस संकेतकर्त्तासे जाकर मिले। उसने गरशुनीकी पाकिटमें कुछ रुपये-पैसे तथा एक पिस्तौल और पासपोर्ट रख दिये। दो मील पैदल चल कर गरशुनी उस स्थान पर पहुंचे जहां एक बर्फ पर चलने-वाली गाड़ी सुबहसे ही उनकी प्रतीक्षा कर रही थी। अपने उस मित्रसे जो उनके संग सुरङ्गसे निकला था और उन्हें पहुंचानेको यहांतक आया था, बिदा लेकर वे रवाना हुए तथा पहाड़ियों और घाटियोंको पार करके एक छोटेसे नगरमें जा पहुंचे जहां उनके कुछ मित्र उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे तथा उनके छिपानेके लिए एक सुरक्षित स्थानका प्रबन्ध कर रक्खा था। पर वह वहां ज्यादा समयतक न ठहरे। भिक्षुकका रूप बनाकर वहांसे रेलवे ट्रेन द्वारा नागसकी बन्दरगाहके लिये रवाना हुए। राहमें कई स्थानोंपर उन्हे फटकार सहनी पड़ी। एक स्टेशनपर पुलिसके एक बड़े अफ-सरने 'रास्तेसे हट जा' गन्दा आदमी !' कहकर उन्हे खूब जोरसे डांटा था जिससे उनका हृदय आनन्दित हो उठा। पांच दिनतक रेलकी सफर करके वह नागसकी पहुंचे। अन्तिम तथा सबसे अधिक खतरेका मुहाना यही था। यह वही स्थान था जहां मुइ-श्किन तथा उसके साथी दो हजार मीलकी सफर निर्विघ्न समाप्त करके भी गिरफ्तार कर लिये गये थे। पर गरशुनीके ऊपर पर-मात्माकी कुछ ऐसी दया थी, कि वे यहां भी बाल-बाल बचे गये। जहाजपर सवार होकर जापान जा पहुंचे।

इधर अकटुइके जेलखानेमें उनके मित्रोंने यह प्रयत्न किया कि कम-से-कम दो दिनतक भी उनके लापता होनेकी खबर अधिकारियोंको न लगे। जिस दिन वह जेलखानेसे निकले थे उस दिन प्रातःकाल उन्होंने जाकर मुख्य वार्डर तथा ओवरसीयरसे मुलाकात की थी ताकि वे दिनभर उनकी खोज न करें। उनके चले जानेके बाद उनके मित्रोंने इस बातकी चेष्टा की, कि शामकी हाजिरीके समय किसी तरह हाजिरी लेनेवाले अफसरको धोखेमें डालकर उनकी हाजिरी लिखवा दी जाय।

गरशुनी जिस कमरेमें रहते थे उसमें तीन-चार और भी कैदी रहा करते थे। उनमेंसे एकने एक मोमकी प्रतिमा बनाकर उसे गरशुनीके बिछावनपर लिटा दिया तथा ऊपरसे चादर डाल दी। शामके वक्त वे उसकी ओर बैठकर खूब जोर-जोरके साथ वाद-विवाद करने लगे। हाजरी लेनेवाले अफसरके किवाड़ खोलनेके पहिले ही उनमेंसे एक व्यक्ति उठकर गरशुनीके बिस्तरेके पास खड़ा हो गया तथा खूब ऊँचे स्वरमे उसे सम्बोधन करके कहने लगा—"ग्रेगरी। क्या तुम नहीं जानते कि सूर्य-ग्रहणका उसके शुक्ल पटलपर .. .." और उसके दो चार संगी उसके दोनों ओर खड़े होकर ध्यानपूर्वक उसकी स्पीचको सुनने लगे। हाजरी लेनेवाले अफसरको इन वाद-विवादोंमें अभिरुचि न थी, अतएव वह दरवाजेसे ही यह देखकर कि कमरेके रहनेवाले सभी कैदी हाजिर हैं, सन्तुष्ट हो गया और वहांसे उनके नाम पुकारने लगा। गरशुनीकी तरफसे एक कैदीने आवाज बदलकर

हाज़िर कह दिया और वहां उनकी हाजिरी दर्ज हो गयी। पर इसके एक घण्टेके बाद ही एक दूसरी आफत आयी जिससे छुटकारा न मिल सका। जेलका एक अफसर जो कभी-कभी अवकाशके समय गरशुनीसे आकर बातचीत किया करता था, उससे मिलने आया। बिस्तरेके पास आकर जो उसने गरशुनीको उठाना चाहा तो उसकी जगह उसे मोमकी एक प्रतिमा मात्र दीख पड़ी। इसे देखते ही वह समझ गया कि बात क्या है और जेलरके पास जाकर उसने तत्काल इसकी सूचना दी। गवर्नरने जो यह समाचार सुना तो दंग रह गया और उसे इस बातकी बड़ी ग्लानि हुई कि गरशुनी जैसा जारशाहीका प्रबल शत्रु तथा भयावह आतंकवादी उसके पिंजड़ेसे निकल भागा। तुरन्त ही यह समाचार, जंगलकी आगकी तरह, सारे जेलमें फैल गया तथा रात भर जेलके कोने-कोनेकी छानबीन होती रही। पर वह किस तरह जेलसे निकल भागा इसका पता न चला। जेलके बाहरके मकानोंकी भी तलाशी ली गयी, पर इससे भी कुछ लाभ न हुआ। गवर्नरसे लेकर सन्तरीतक सभी आश्चर्य-चकित हो रहे थे। किसीकी समझमें यह न आ रहा था कि गरशुनी किस राहसे और कब जेलसे बाहर निकला। गवर्नरने अन्तमें इसकी सूचना प्रान्तीय गवर्नरके पास भेजी। अकटुइमें तार-घर न होनेके कारण सूचना जानेमे विलम्ब हुआ। गरशुनीके लिये यह अच्छा ही हुआ, क्योंकि जबतक उसके भागनेकी खबर प्रान्तीय गवर्नरके पास पहुंची, तबतक वह कोसों दूर निकल गये।

जब यह संवाद सेण्ट पिटर्सवर्ग सरकारके पास पहुंचा तो वह बेचैन हो गई, क्योंकि गरशुनीको वह बडा बलवान दुश्मन समझती थी और उसने देशभरमे उनकी खोज करनी शुरू कर दी। पर इसका कोई परिणाम न हुआ। बहुत दिनोंतक गरशुनीके पकड़नेकी चेष्टा होती रही, पर गरशुनी तबतक जापान पहुंच चुके थे और डाक्टर रशेलके साथ बैठे हुए अपने अनुभव सुना रहे थे। रूसमें कुछ दिनोंतक खूब तहलका मचा रहा।

गरशुनीको भगानेके लिये जो षड़यन्त्र रचा जा रहा था, उस की खबर अकटुइ जेलके साधारण कैदियोंतकको थी, पर यह मार्केकी बात है कि इसका भण्डाफोड़ किसीने भी नहीं किया हालाकि ऐसा करनेसे उसे गवर्नमेण्टकी ओरसे बहुत बड़ा पुरस्कार मिलता।